प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५०
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक,
बालकृष्ण एम० ए०
युगान्तर प्रेस,
मोरी गेट, देहली

आमुख

संत-साहित्य पर प्रायः यह आरोप किया गया है कि 'नारी-निंदा' उनका एक प्रमुख अङ्ग है। गहराई से देखने पर इस दोषारोप में सत्य का कुछ ही अंश मिलेगा। पूर्ण सत्य तो यह है कि सन्तों या यतियों और भिक्षुओं ने निन्दा अथवा कठोर आलोचना सर्वत्र काम-वासना की ही की है और उनमें बहुत बड़ी संख्या पुरुष साधकों की ही रही है।

किन्तु असल में नारी को अत्यधिक अपमानित तो हमारे शृङ्गार-रस-प्रधान साहित्य में किया गया है। जिस काम-वासना की यतियों और भिक्षुओं ने भर्त्सना की है, उसीको शृङ्गारी कवियों ने अलंकृत भाषा तथा आकर्षक शैली में अभिव्यक्त एवं उत्तेजित किया है। नारी के बाह्य रूप पर ही सदा उनकी कामुक दृष्टि अटकी रही है। उनके आंतरिक रूप अथवा शील का स्पर्श उनकी प्रतिभा ने शायद ही कभी किया। नारी को मात्र प्रदर्शन की वस्तु बनाकर उसका भारी अपमान किया गया। तब, संत-साहित्य में इसकी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। जरा-मरण-परिणामी रूप-सौन्दर्य की असलियत को ज्ञान-चक्षुओं से देखा यतियों और भिक्षुओं ने और भिक्षुणियों ने भी।

अन्तर्चक्षुओं के खुलते ही एक बौद्ध भिक्षुणी गा रही है :

"वनचारिणी कोकिला की मधुर कूक के समान किसी समय
मेरी प्यारी मीठी बोली थी—
वही आज जरावस्था में स्खलित और भर्राई हुई है:
स्थूल, सुगोल उन्नत कभी मेरे दोनों स्तन सुशोभित होते थे,
वही आज जरावस्था में पानी से रीती लटकी हुई चमड़े की
थैलियों के सदृश हो गये हैं;

सुन्दर, विशुद्ध, स्वर्ण-फलक के समान कभी मेरा शरीर चमकता था,
वही आज जरावस्था में सूक्ष्म झुर्रियों से भरा हुआ है।"

रूप-सौंदर्य का क्या ही यथार्थ दर्शन इस चक्षुष्मती स्थविरा ने किया है!

एक दूसरी थेरी का महा पुरुषार्थ देखिए। वह विश्व-विजयी मार को किस तेजस्विता के साथ डाँट रही है:

"काम-तृष्णा और स्कंध-समूह भाले की तरह विद्ध करते हैं,
जिसे तू भोगों का आनन्द कहता है वही मेरे लिए दुःख है,
घृणा का कारण है।
वासना का सब जगह से उच्छेदन कर मैंने अज्ञानान्धकार
को विदीर्ण कर दिया है।
पापी मार! प्राणियों का अंत करने वाले! समझ ले, आज
तेरा ही अंत कर दिया गया। तू मार डाला गया!"

इन भिक्षुणिओं ने, इन थेरियों ने, वासना की जड़ को तोड़ डाला था, हृदय-मूल से दाहक तृष्णा-तन्तुओं को उखाड़ कर फेंक दिया था, उनके समस्त मल नष्ट हो गये थे, क्योंकि उन्होंने अशुचि, दुर्गन्धमय और व्याधियों के भरे शरीर का ध्यान किया था, उसे एकाधिक बार अशुभ भावना की दृष्टि से देखा था।

और अब वे सब निर्माण-पथ-गामिनी थेरियाँ सम्यक् संबुद्ध का उपदेशामृत पीकर परितृप्त थीं, प्रमुदित थीं। उनके जीवन में अब अन्धकार नहीं, प्रकाश था; निराशा नहीं, मंगलाशा की उषा थी; उनके निर्वेद में से आनन्द-ही-आनन्द छलकता था। उनके पुण्य प्रमोद के गीतोद्गार थे:

"आज मेरी भव-बेड़ी कट गई।"
"मेरे हृदय में बिंधा हुई तीर निकल गया।"

"तृष्णा की लौ सदा के लिए बुझ गई।"
"सब चित्त मलों से मैं विमुक्त हूँ।"
"सभी बोझों को उतार कर मैंने फेंक दिया है।"
"मैं सर्वोत्तम मङ्गलों की अधिकारिणी हूँ आज।"
"अब मैं सर्वथा निष्पाप हूँ, परम शान्त हूँ।"

ऐसी हैं बौद्ध भिक्षुणियों की, थेरियों की लोक-कल्याणकारी गाथाएँ और पुण्य कथाएँ।

पालि-वाङ्मय से थेरी-गाथाओं को अनुवादित कर विद्वद्वर पंडित भरतसिंह उपाध्याय ने हिन्दी-साहित्य की वास्तव में सत्सेवा की है। अनुवाद यथार्थ, शैली सरल और भाषा सुन्दर और सजीव है। आशा है, हिन्दी जगत् में 'थेरी-गाथाएँ' का समुचित आदर होगा। ऐसे श्रेयस्कर साहित्य की आज अधिक आवश्यकता है। पाश्चात्य भोग-प्रधान सभ्यता का आज जिस प्रबल वेग से हमारे देश पर आक्रमण हो रहा है, उसे कुछ हद तक रोकने में, मेरी श्रद्धा है, ऐसा साहित्य अवश्य सहायक हो सकता है। कन्या-विद्यालयों एवं महिला-विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में 'थेरी-गाथाएँ' को स्थान मिलना ही चाहिए। इसके अधिक-से-अधिक प्रचार का मैं आकांक्षी हूँ।

हरिजन निवास,
दिल्ली ७ जुलाई '५०

— वियोगी हरि

वस्तुकथा

पालि बौद्ध साहित्य तीन पिटकों या पिटारियों में रक्खा हुआ है। वे तीन पिटक हैं—सुत्त-पिटक, विनय-पिटक, और अभिधम्म-पिटक। सुत्त-पिटक पाँच निकायों अथवा शास्त्र-समूहों में विभाजित है—दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुक्त-निकाय, अंगुत्तर-निकाय और खुद्दक-निकाय। खुद्दक-निकाय में १५ ग्रन्थ हैं। उन्हींमें से एक 'थेरी-गाथा' (भिक्षुणियों की गाथाएँ) है।

'थेरी गाथा' ५२२ गाथाओं (पालि-श्लोकों) का एक संग्रह है, जिसमें ७३ बौद्ध भिक्षुणियों के उद्गार सन्निहित हैं। अत्यन्त संगीतात्मक भाषा में, आत्माभिव्यंजनात्मक गीति-काव्य की शैली के आधार पर, अपने जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए यहाँ बौद्ध भिक्षुणियों ने अपने जीवन-काव्य को गाया है। नैतिक सचाई, भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि, इन गीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। निर्वाण की परम शान्ति से भिक्षुणियों के उद्गारों का एक-एक शब्द उच्छ्वसित है। यहाँ संगीत भी है और जीवन का सच्चा दर्शन भी। आधुनिक गीत की परिभाषा करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा ने कहा है, "सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।" इस अर्थ में भिक्षुणियों की गाथाएँ श्रेष्ठतम गीत कही जा सकती हैं; किंतु आधुनिक गीतों से इनकी अनेक विशेषताएँ भी हैं। सबसे बड़ी और प्रधान बात तो यह है कि आधुनिक गीतकार की चिरसंगिनी वेदना का यहाँ पता तक नहीं है। बौद्ध भिक्षुणियाँ निराशावादिनी नहीं हैं। निर्वाण की परम शान्ति का वर्णन करते हुए वे थकती नहीं। जीवन की विषमताओं पर अपनी विजय का ही वे गान गाती हैं। अपनी निम्न प्रकृति (मार) से वे डटकर लड़

सकती हैं और उस पर विजय प्राप्त करती हैं। विजय-प्राप्ति की अवस्था में उनका यह उद्गार फूट पड़ता है, "अहो! मैं बुद्ध की कन्या हूं। उनके मुख से उत्पन्न, उनके हृदय से उत्पन्न!" नारी-जीवन को भगवान् बुद्ध की अनुकम्पा का कितना बड़ा भाग मिला था! अवसाद और दुश्चिन्ता की यहाँ कहीं झलक तक नहीं है। "अहो! मैं कितनी सुखी हूं! मैं कितने सुख से ध्यान करती हूं।" यह उनके उद्गारों की प्रतिनिधि ध्वनि है। बार-बार उनका यही प्रसन्न उद्गार होता है, "सीतिभूतम्हि निब्बुता।" अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर मैं परम शान्त हो गई, निर्वाण की परम शान्ति का मैंने साक्षात्कार कर लिया। निराशा, दुःख और स्वच्छन्दता की प्रवृत्तियाँ जो विश्व के अधिकांश गीति-साहित्य की विशेषताएँ हैं, यहाँ बिलकुल नहीं मिलेंगी। भिक्षुणियों के उद्गारों में निराशा-वाद का निराकरण है, पुरुषार्थ की विजय है, साधनालब्ध इन्द्रियातीत सुख का साक्ष्य है और नैतिक ध्येयवाद की प्रतिष्ठा है। आज बुद्ध और बौद्ध संस्कृति के नाम के साथ दुःख और निराशावाद के तत्त्वों को अक्सर जोड़ दिया जाता है। कुछ-एक आधुनिक गीतकारों के विषय में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि उनकी वेदना-विवृति पर बौद्ध प्रभाव उपलक्षित है; किन्तु यह एक शुद्ध भ्रम है। बुद्ध या उनके शिष्य भिक्षु-भिक्षुणियों ने कभी दुःख और निराशा के गीत नहीं गाये। भगवान् बुद्ध का आविर्भाव ही दुःख के प्रहाण के लिए हुआ। जो कुछ भी दुःख का वर्णन बौद्ध धर्म में है, वह इसी दृष्टि से है कि "जो दुःख को देखता है, वह उसके समुदय को भी देखता है, उसके निरोध को भी देखता है और निरोध के मार्ग को भी।" अतः यह दुःख-दर्शन भी अन्त में सुख में पर्यवसित होता है, जिसका साक्षात्कार यहीं जीते-जी निर्वाण के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत आधुनिक गीति-काव्य में अतृप्त वासना है, अलब्ध

सौन्दर्य की उपासना है, जिससे निराशा पैदा होती है। आज का कवि सौन्दर्य-पान को जीवन का लक्ष्य बनाता है, फिर उसे विष का स्वाद क्यों न बताना पड़े? किन्तु बौद्ध भिक्षुणियाँ तो अशेष संस्कारों को ही अनित्य, दुःख और अनात्म मानती हैं, वासना के क्षय के लिए प्रयत्न करती हैं, सौन्दर्य में अशुभ की भावना करती हैं। फिर इन बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उनके सुख के गीत क्यों न हों? यही आधुनिक गीतों और इन भिक्षुणियों के गीतात्मक उद्गारों की मुख्य विभिन्नताएँ हैं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'थेरी-गाथा' में ७३ भिक्षुणियों के उद्गार सन्निहित हैं। ये सभी भिक्षुणियाँ भगवान् बुद्ध की शिष्याएँ थीं। महाराज शुद्धोदन की मृत्यु के उपरान्त भगवान् बुद्ध ने अपनी विमाता महाप्रजापती गोतमी को बहुत कुछ संकोच के साथ भिक्षुणी होने की अनुमति दे दी थी। उसके साथ पाँच सौ अन्य महिलाएँ भी प्रव्रजित हुई थीं। कालान्तर में भिक्षुणियों का एक अलग संघ ही बन गया था और नाना कुलों और नाना जीवन की अवस्थाओं से प्रव्रजित होकर स्त्रियों ने शाक्यमुनि के पाद-मूल में बैठ कर साधना का मार्ग स्वीकार किया था। इन्हीं में से ७३ भिक्षुणियाँ अपने जीवनानुभवों को हमारे लिए अनुकम्पा-पूर्वक छोड़ गई हैं, जो 'थेरी-गाथा' के रूप में आज हमारे लिए उपलब्ध हैं। यही 'थेरी-गाथा' की रचना का संक्षिप्त इतिहास है।

किस उद्देश्य से, किन कारणों से, किस सामाजिक परिस्थिति में प्रत्येक भिक्षुणी ने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ली थी, इसका संक्षिप्त विवरण 'थेरी-गाथा' की टीका 'परमत्थदीपनी' (पाँचवीं शताब्दी) के आधार पर प्रत्येक गाथा के प्रारम्भ में दे दिया गया है। इससे प्रत्येक भिक्षुणी के जीवन-वृत्त के साथ उसकी गाथा का सम्बन्ध मिलाते हुए और उन अवस्थाओं का

अवेक्षण करते हुए, जिनमें उनके ये उद्‌गार निकले थे. पाठक इन संप्रहर्षक गाथाओं की आत्मा को समझ सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

प्रस्तुत अनुवाद सन् '४७ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' के अप्रैल-सितम्बर अङ्क में निकला था। अनेक विद्वानों ने इसे प्रसन्न दृष्टि से देखा था, जिनमें विशेषतः महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भिक्षु श्री धर्मरत्नजी और श्री वियोगी हरिजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मैं इन पूज्य महानुभावों का हृदय से कृतज्ञ हूं। मेरी प्रार्थना पर श्री वियोगी हरि जी ने कृपा कर इस रचना की भूमिका लिख दी है। यह उनके मुझ पर असीम अनुग्रह और वात्सल्य-भाव का परिणाम है। पालि साहित्य के प्रकांड पंडित पूज्य भिक्षु श्री धर्मधरजी से अनेक संदिग्ध स्थलों को साफ करने में मुझे बड़ी सहायता मिली है। मैं पूज्य भिक्षुजी की कृपा के लिए उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

बहुत सावधानी रखते हुए भी यह असम्भव नहीं है कि कुछ अशुद्धियां फिर भी अनुवाद में रह गई हों। विज्ञ पाठक उनसे मुझे अभिज्ञात कर कृतार्थ करेंगे, ऐसी प्रार्थना है।

जैन कालेज,
बड़ौत। } —भरतसिंह उपाध्याय

विषय-सूची

थेरी-गाथाएँ

पहला वर्ग

१. एक अज्ञातनामा भिक्षुणी

जन्म-स्थान वैशाली, क्षत्रिय-कुल में जन्म। कुलीन पति से विवाह। एक दिन महाप्रजापती गोतमी के उपदेश को सुनकर प्रव्रज्या की इच्छा की ; किन्तु पति के आज्ञा न देने पर गृहस्थ धर्म-पालन में ही लग गई। चित्त तो धर्म-चिन्ता में ही लगा रहा। एक दिन रसोई-घर में खाना पका रही थी। सहसा आग अधिक जल जाने से कढ़ाई में पकता हुआ शाक जल गया। इस घटना से उसे संसार की सारी वस्तुओं की अनित्यता का गम्भीर ज्ञान उत्पन्न हुआ। बहुमूल्य वस्त्र और गहने पहनने छोड़ दिये। पति के पूछने पर कहा, "स्वामिन्! सांसारिक जीवन-यापन करने में मैं अपने को सर्वथा असमर्थ अनुभव करती हूँ।" पति ने महाप्रजापती गोतमी के पास जाकर कहा, "आर्ये! इसे प्रव्रज्या दें।" महाप्रजापती गोतमी ने उसे प्रव्रजित कर शास्ता के सामने ले जाकर दिखाया। शास्ता ने उसकी महान वैराग्य-वृत्ति देखकर, जिस घटना से उसकी अन्तर्दृष्टि जगी थी, उसकी ओर लक्ष्य करते हुए, नीचे लिखी गाथा कही। इसी गाथा को याद में वह भिक्षुणी अपने लिए संबोधित कर निरन्तर उच्चारण करती हुई सुनी जाती थी। इसलिए उसी के नाम के साथ यह जोड़ दी गई है।

वत्से ! तू सुख की नींद सो।

अपने हाथ से बनाये हुए चीवर को ओढ़कर,
तू (इस शरीर में) परम शान्ति प्राप्त कर।
क्योंकि कढ़ाई में पड़े हुए शुष्क शाक की तरह,
तेरा राग-समूह (दग्ध होकर) शान्त हो गया ! ॥१॥

२. मुक्ता

जन्म-स्थान श्रावस्ती, ब्राह्मण-कुल मे जन्म। बीस वर्ष की अवस्था में गृहत्याग। महाप्रजापती गोतमी के निरीक्षण में विद्यार्थिनी (शिक्षमाणा) का जीवन बिताते हुए एक दिन भिक्षा से लौट आने के बाद, सभी आवश्यक कार्यों को समाप्त कर, निर्जन स्थान में ध्यान के लिए बैठ गई। शास्ता ने उस समय उसके सामने प्रकट होकर उसे उत्साहित करने के लिए नीचे लिखी गाथा कही। बाद में मुक्ता इसे अपने लिए सम्बोधित कर निरन्तर पाठ किया करती थी। इसलिए यह उसी के नाम के साथ सम्बन्धित कर दी गई है।

मुक्ता ! तू मुक्त हो जा। राहु के ग्रहण से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह, तू भव शृंखलाओं से मुक्त हो जा।
विमुक्ति-प्राप्त चित्त के द्वारा ऋण को चुकाकर ही तू (राष्ट्र का) अन्न खा ॥२॥

३. पूर्णा

जन्म-स्थान श्रावस्ती, शाक्यकुल में जन्म। महाप्रजापती गोतमी के उपदेश से गृहत्याग। एक दिन अन्तर्दृष्टि के विकास के लिए ध्यानरत होकर बैठी थी कि भगवान् बुद्ध ने अपने अलौकिक प्रभाव से, गंधकुटी में ही बैठे हुए, उसके सामने निम्नलिखित गाथा का उच्चारण किया। उसको सुनते ही पूर्णा को अर्हत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हो गई और भगवान के वचनों की ही पुनरावृत्ति करती हुई वह ज्ञान के पूर्ण उन्मेष में गाने लगी :

पूर्णे ! तू पूर्णता प्राप्त कर। पूर्णमासी के (पूर्ण) चन्द्रमा की तरह तू कल्याणकारी धर्मों में पूर्णता प्राप्त कर।
प्रज्ञा की परिपूर्णता से तू अन्धकार-पुंज को विदीर्ण कर देगी ॥३॥

४. तिष्या—१

जन्म-स्थान कपिलवस्तु, शाक्यकुल में जन्म। महाप्रजापती के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर अन्तर्दृष्टि की साधना में लग गई। पूर्वोक्त पूर्णा की तरह ही तिष्या ने अपने लिए अभिप्रेत संप्रहर्षक बुद्ध-गाथा को सुना, जिसकी पुनरावृत्ति उसने की।

तिष्ये ! तू तीन शिक्षाओं[1] को सीख। देख, बन्धन (योग)[2] तेरा अतिक्रमण न करें।
सभी बन्धनों से दूर रहकर तू निर्मल चित्त से इस लोक में विचरण कर ॥४॥

५. तिष्या—२

५ से १० संख्यक भिक्षुणियों की जीवनियां प्रायः उपर्युक्त तिष्या के ही समान हैं। ये सब कपिलवस्तु-वासिनी शाक्य-कुल की महिलाएँ थीं, जिनकी प्रव्रज्या महाप्रजापती गोतमी के साथ हुई।

तिष्ये ! तू कल्याणकारी धर्मों के सेवन में लग। देख, तेरा समय निकल न जाय।
जिनका समय निकल गया, उन्हें दुर्गति में पड़कर सदा शोक ही करना पड़ता है ॥५॥

६. धीरा—१

धीरा ! तू उस समाधि का स्पर्श कर, जहां सब चित्तविक्षेपों

---

१. शील, समाधि और प्रज्ञा सम्बन्धी शिक्षाएँ।
२. योग (बन्धन) चार हैं : काम, भव, मिथ्या दृष्टि और अविद्या।

का निरोध है, इन्द्रिय-ज्ञानों की शांति है, परम सुख है !
धीरा ! तू उस निर्वाण की आराधना कर, जो महामंगलकारी
है और जिससे बढ़कर यहां कुछ नहीं ॥६॥

७. धीरा—२

भिक्षुणी धीरा ! तूने दृढ़ साधनाओं से श्रद्धादि जीवनी-
शक्तियों का विकास किया।
अब तू मार और उसकी सेना को पराजित कर यह अन्तिम
शरीर धारण करती है ! ॥७॥

८. मित्रा

भिक्षुणी मित्रा ! तू ने श्रद्धा से प्रव्रज्या ग्रहण की, अब तू
(अशेप प्राणियों के साथ) मैत्री-भावना में लग जा।
सर्वोत्तम, शांतिदायक, कुशल-धर्मों का तू विकास करेगी ॥८॥

९. भद्रा

भाग्यवती भद्रे ! तू ने श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ली। अब तू उसके
अनुकूल कल्याणकारी धर्मों (भद्र) में लीन हो जा।
कुशल धर्मों का अनुशीलन करती हुई, तू परम शांति के
मार्ग में अग्रसर होगी ! ॥९॥

१०. उपशमा

उपशमे ! निर्मल और शांतचित्त होकर तू मृत्युरूपी दुस्तर
बाढ़ को पार कर।
मार और उसकी सेना को जीत कर, तू यह अन्तिम देह
धारण करती है ! ॥१०॥

११. मुक्ता—२

कोशल जनपद की दरिद्र ब्राह्मण-कन्या। दरिद्र कुबड़े पति से
विवाह। पति से निवेदन किया कि गृहस्थाश्रम में रहना मेरे लिए संभव

नहीं। उसकी आज्ञा लेकर प्रव्रज्या ग्रहण की। विपश्यना-प्रज्ञा की भावना के लिए साधना में रत हुई, किंतु चित्त बाह्य वस्तुओं की ओर आकृष्ट होता था। आत्म-संयम का अभ्यास किया और शीघ्र ही अर्हत्त्व ज्ञान प्राप्त कर लिया। ज्ञान-प्राप्ति के उल्लास में उद्गार करने लगी :

मैं सुमुक्त हो गई ! अच्छी विमुक्त हो गई ! तीन टेढ़ी चीजों से मैं भली विमुक्त हो गई।

ओखली से, मूसल से, अपने कुबड़े स्वामी से, मैं अच्छी मुक्त हो गई !

(किन्तु इससे भी एक और महान् मुक्ति मुझे मिली)

मैं आज जरा और मरण से ही मुक्त होगई ! मेरी भव-बेड़ी ही कट गई ! ॥११॥

१२. धम्मदिन्ना

राजगृह में वैश्य-कुल में जन्म। विशाख नामक समृद्धिशाली सेठ से विवाह। एक दिन उसका पति बुद्ध-दर्शन के लिए गया और वहां से गंभीर ज्ञान-दृष्टि लेकर लौटा। घर आने पर उसने अपनी पत्नी द्वारा प्रेम-प्रदर्शन का कोई उत्तर नहीं दिया और सायंकाल का भोजन करते समय भी उसने बात-चीत नहीं की। पत्नी ने अनुनय-पूर्वक पूछा, "स्वामिन् ! क्या मुझ से कोई दोष हो गया ?" पति ने उत्तर दिया, "धम्मदिन्ने ! तेरा कोई दोष नहीं है; परंतु मैं ही आज से स्त्री-शरीर को स्पर्श करने और भोजन में स्वाद-लोलुपता अनुभव करने के अयोग्य हो गया। इसलिए यदि तू चाहे तो इस घर में रह, अन्यथा जितना भी धन तू चाहे लेकर अपने माता-पिता के घर चली जा।" उसने अपने पति के साथ प्रव्रज्या लेना ही स्वीकार किया। प्रव्रजित होकर धम्म-दिन्ना ने एकांत, निर्जन स्थान में साधना की। वह बुद्ध की धर्म-प्रचारक शिष्याओं में अग्रणी मानी जाती थी। निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग में

अग्रसर होने के लिए जब वह पुरुषार्थ कर रही थी तब उसने कहा था:

जो सम्पूर्ण अन्तःकरण की वृत्तियों से परम शांति की इच्छा करता है और जो भोग-तृष्णा के आकर्षण में प्रलुब्ध होता नहीं,
वही 'ऊर्ध्वस्रोत' (संसार रूपी स्रोत के ऊपर जाने वाला) कहलाता है ॥१२॥

१३. विशाखा

जीवन-कथा भिक्षुणी धीरा के समान। विमुक्ति-सुख का अनुभव करते हुए उसने नीचे लिखी गाथा कही:

बुद्ध-शासन को (पूरा) करो, जिसे करके पछताना नहीं होता।
अभी शीघ्र पैर धोकर, एकांत (ध्यान) में बैठ जाओ ॥१३॥

१४. सुमना—१

जीवन-कथा भिक्षुणी तिष्या के समान। भगवान् बुद्ध ने भिक्षुणी सुमना के सामने योगबल से प्रकट होकर उद्बोधित करते हुए कहा:

संसार के सभी आधारों को क्या दुःखमय देखती नहीं?
तो फिर पुनर्जन्म की आसक्ति न करना।
संसार की आसक्ति को त्याग कर तू परम शांति प्राप्त कर विचरेगी ॥१४॥

१५. उत्तरा

जीवन-कथा भिक्षुणी तिष्या के समान ही। अर्हत्व-ज्ञान प्राप्त करने के समय उसका यह उद्गार उच्छ्वसित हो उठा:

एकनिष्ठ होकर मैंने काया, मन और वाणी को संयत किया।
फिर तृष्णा की जड़ को मैंने उखाड़ कर फेंक दिया!
आज मैं शांत हूं! निर्वाण-प्राप्त हूं!
निर्वाण की परम शांति को मैंने साक्षात्कार किया है! ॥१५॥

१६. सुमना—२

जन्म-स्थान श्रावस्ती, कोशलराज प्रसेनजित् की भगिनी। प्रसेनजित् के प्रति दिए हुए भगवान् के उपदेश को सुन कर धर्म में श्रद्धावती हुई। संसार के प्रति अत्यन्त अनासक्ति होते हुए भी उसने चिर काल तक प्रव्रज्या ग्रहण नहीं की। कारण यह था कि उसकी दादी जीवित थी, इसलिए उसने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक यह जिएगी इसकी सेवा करूँगी। बाद में उसकी मृत्यु होने पर भाई से अनुमति लेकर बुढ़ापे में वह प्रव्रजित हो गई। भगवान् ने उसके ज्ञान की पूर्णता देख कर उससे नीचे लिखी गाथा कही, जिसका वह प्रायः उच्चारण किया करती थी :

वृद्धा ! तू सुख की नींद सो।
अपने हाथ से बनाये हुए चीवर को ओढ़ कर,
तू (इस शरीर में) परम शान्ति प्राप्त कर ;
क्योंकि, तेरा राग शांत हो गया !
निर्वाण को साक्षात्कार कर तू परम शांत हो गई ! ॥१६॥

१७. धम्मा

श्रावस्ती में कुलीन घर में जन्म। पति की आज्ञा न मिलने से संघ में प्रवेश नहीं कर सकी। बाद में उसकी मृत्यु होने पर भिक्षुणी हो गई। एक दिन भिक्षा से लौट कर आ रही थी कि विहार के समीप निर्बलता के कारण गिर पड़ी। उसी को समाधि का आलम्बन बना कर वह ध्यान-मग्न हो गई। अर्हत्व-ज्ञान प्राप्त होने पर वह उदान में गाने लगी :

एक दिन भिक्षा के लिए बड़ी दूर जाकर मैं दुर्बल शरीर वाली लकुटी के सहारे विहार के समीप आई ही थी कि क्लांत और कम्पित होकर वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ी।
गिरते ही इस काया के दोषों का मुझे स्पष्ट दर्शन हुआ।

मेरा शरीर धरती पर पड़ा था !

किंतु चित्त विमुक्त (होकर ऊर्ध्वगामी) हो गया था ! ॥१७॥

१८. संघा

जीवन-कथा भिक्षुणी धीरा के समान। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई संघा कहती है :

संन्यास लेकर मैंने घर छोड़ा, प्यारी संतान को छोड़ा, प्यारे पशुओं को छोड़ा !

राग और द्वेष को छोड़ा, अविद्या को छोड़कर विरक्त हुई !

तृष्णा की जड़ को खोद कर अब मैंने निर्वाण की परम शांति का साक्षात्कार किया।

निर्वाण का साक्षात्कार कर मैं परम शांत हो गई ! ॥१८॥

दूसरा वर्ग

१६. अभिरूपा नंदा

कपिलवस्तु नगर के खेमक नामक शाक्य क्षत्रिय की पुत्री। वास्तविक नाम नन्दा; किन्तु अतिशय मनोमुग्धकारी सौंदर्य के कारण अभिरूपा नाम उसके साथ और जोड़ दिया गया। उसके स्वयंवर के दिन चरभूत नामक शाक्यकुमार, जिसके साथ उसका सम्बन्ध होना था, मर गया। इस पर उसके माता-पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे प्रव्रज्या लेने पर विवश किया। संघ में प्रविष्ट होने पर भी नंदा को अपने रूप का गर्व बना रहा। वह अपने सौंदर्य को देख कर स्वयं प्रसन्न हुआ करती। वह भगवान् बुद्ध के पास जाने से भी झिझकती, क्योंकि वह जानती थी कि शास्ता रूपरी सौंदर्य के दोष दिखाते हैं: किन्तु भगवान् बुद्ध ने उसे ज्ञान-प्राप्ति की उपयुक्त अधिकारिणी समझा। इसलिए उन्होंने महाप्रजापती गोतमी से कह दिया कि सभी भिक्षुणियां उनके पास क्रम से उपदेश ग्रहण करने के लिए आवेंगी। जब नन्दा का नम्बर आया तो उसने अपनी प्रतिनिधि-स्वरूपा एक अन्य भिक्षुणी को भेज दिया। भगवान् ने कहा, "कोई भिक्षुणी अपना प्रतिनिधि न भेजे।" बाध्य होकर अभिरूपा नन्दा को भगवान् के सामने आना ही पड़ा। शास्ता ने अपने अलौकिक योग-बल से उसे एक अतिशय सुन्दरी स्त्री के दर्शन कराए। फिर उसके जराग्रस्त रूप की दुर्दशा दिखाई। नन्दा के मर्म पर आघात हुआ। सम्यक् सम्बुद्ध ने नन्दा को सम्बोधित करते हुए नीचे लिखे श्लोक कहे, जिनका वह बाद में अपने को सम्बोधन कर उच्चारण किया करती थी:

नंदा ! अशुचि, दुर्गन्धमय और व्याधि के समूह इस शरीर का ध्यान से अवलोकन कर। एकाग्र और अच्छी प्रकार समाधिनिष्ठ चित्त की शांति में प्रतिष्ठित होकर तू अशुभ की भावना में चित्त को लगा ॥१६॥

पदार्थों को अनित्य, दुःख और अनात्म के रूप में देखने का अभ्यास कर, तू अहंकार रूपी चित्त के अन्तःशायी मल को छोड़ दे। अहंभाव के सम्यक् दमन करने पर, तू शांत और निर्मल-चित्त होकर विचरण करेगी ॥२०॥

२०. जयन्ती (अथवा जयन्ता)

वैशाली के लिच्छवि राज-कुल में जन्म। भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेश को सुन कर अर्हत्त्व प्राप्त किया। उसी के उल्लास में गाने लगी :

निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप ये जो बोधि के सात अङ्ग हैं, भगवान् बुद्ध के उपदेश के अनुसार मैंने उन सब की भावना की ! ॥२१॥

मैंने उन भगवान् के दर्शन किए, (मुझे अनुभव हुआ) यह मेरा अन्तिम शरीर है।

आवागमन नष्ट हो गया, अब मेरा पुनर्जन्म होना नहीं है ! ॥२२॥

२१. सुमंगल-माता

श्रावस्ती के एक दरिद्र परिवार में जन्म। किसी छाता बनाने वाले के साथ विवाह। सुमंगल नामक एकमात्र पुत्र, जो बाद में प्रसिद्ध भिक्षु हुआ। वैसे इस भिणी का नाम ज्ञात न होने के कारण 'कोई भिक्षुणी' कह कर इस का परिचय दिया गया है ; परन्तु सुमंगल स्थविर की माता होने के कारण पहचान के लिए इसे सुमंगल-माता भी कहा जाता है। प्रव्रजित हो जाने के बाद एक दिन इसने अपने कष्टपूर्ण दारिद्र्य मय पारिवारिक जीवन का प्रत्यवेक्षण करते हुए और उससे चित्त में

संवेग उत्पन्न होने के कारण अधिक तीव्र पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होते हुए परम ज्ञान को प्राप्त किया और उसी समय यह उद्गार प्रकट किया :

अहो ! मैं मुक्त नारी ! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है !
पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, आज उससे मुक्त हुई !
मेरे स्वामी के पास उसके बनाए हुए रक्खे छातों की डंडियों से भी अधिक क्षीण मेरी देह थी ! ॥२३॥
अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया !
मैं आज वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई जीवन-यापन करती हूं।
अहो ! मैं कितनी सुखी हूं ! मैं कितने सुख से ध्यान करती हूं ! ॥२४॥

२२. अड्ढकासी

वाराणसी की एक वेश्या। श्रावस्ती जाकर भगवान् बुद्ध से उपदेश ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की ; किंतु साथ की अन्य वेश्याओं ने उसके मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर दीं। इस पर उसने स्वयं स्थिति बताते हुए भगवान् के पास एक दूत भेजा। भगवान् ने दूत के द्वारा उसे प्रव्रजित होने की आज्ञा दे दी। अंतर्दृष्टि का विकास करते हुए अड्ढकासी ने परम ज्ञान प्राप्त किया। अपनी पूर्वावस्था का प्रत्यवेक्षण करती हुई वह कहती है :

जितनी समस्त काशी-राज्य की आय है, उतना ही विपुल मेरा शुल्क था। उससे किसी प्रकार कम पारिश्रमिक में मनुष्यों से अपनी सेवा के बदले में नहीं पाती थी। ॥२५॥
किन्तु वही मेरा सब सौंदर्य आज मेरे लिए घृणा का कारण हुआ, ग्लानि पैदा करने वाला हुआ।
मैं उस के मोह से मुक्त होकर अब विरक्त हो गई।
मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्कर में मुझे अब और घूमना नहीं है।

मैंने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया, भगवान् सम्यक् संबुद्ध के शासन को पूरा कर लिया ! ॥२६॥

२३. चित्रा

राजगृह के धनाढ्य नागरिक के घर में जन्म। राजगृह के प्रवेश-द्वार पर सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध का उपदेश सुना। तभी से धर्म-श्रद्धा उत्पन्न हो गई। बाद में महाप्रजापती गोतमी के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण की। वृद्धावस्था में गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर रह कर अवधूत-व्रतों का साधन करने लगी और वहीं अर्हत्त्व प्राप्त किया। अपने अनु-भव का वर्णन करती हुई वह गाती है :

मैं दुःख-मग्न, बलहीन और कड़ी बीमारी में ग्रस्त थी, फिर भी लकुटी की सहायता से मैं पर्वत की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगी ॥२७॥

मेरे कन्धे से चीवर (भिक्षुणी-वस्त्र) गिर गया, भिक्षा-पात्र भी (गिर कर) टूट गया !

पर्वत का सहारा लेकर मैं किसी प्रकार अपनी देह को सँभाल ही रही थी कि मेरा अज्ञानांधकार विदीर्ण हो गया ! ॥२८॥

२४. मैत्रिका

राजगृह के एक धनाढ्य ब्राह्मण की पुत्री। किसी पर्वत पर जाकर इसने साधना की और उपर्युक्त चित्रा के समान ही इसने अर्हत्त्व-प्राप्ति के उल्लास में गाया :

मैं दुःख मग्न थी, बलहीन और गतयौवना थी, फिर भी लकड़ी की सहायता से मैं पर्वत की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगी ॥२९॥

वहीं मेरे कंधे से वस्त्र गिर पड़ा, भिक्षा-पात्र भी गिर कर टूट गया।

में पर्वत की चोटी पर बैठ गई। वहीं मेरा चित्त मुक्त होगया !
तीन विद्याओं को मैंने प्राप्त कर लिया, बुद्ध-शासन को मैंने
(पूरा) कर लिया ! ॥३०॥

२५. मित्रा

कपिलवस्तु में शाक्यों के राज-कुल में जन्म। महाप्रजापती गोतमी से प्रव्रज्या ग्रहण की। अपने पूर्वजीवन का अनुचिंतन करती हुई वह ज्ञानोन्मेष के उल्लास में गाती है :

चतुर्दशी को, पूर्णमासी को और प्रत्येक पक्ष की अष्टमी को,
मैं व्रत रखती थी, उपवास करती थी।
क्यों ? यह सोचकर कि देव-योनि को प्राप्त कर मैं स्वर्ग में
वास करूँगी ! ॥३१॥
वही मैं आज नित्य ही एकाहारी हूं, मुंडे हुए सिर वाली हूं,
चीवर पहनने वाली हूं।
किंतु आज मुझे देव-योनि की कामना नहीं है, स्वर्ग में वास
करने की अभिलाषा नहीं है।
कारण, मैंने हृदय को जलाने वाली आशाओं को ही दूर
फेंक दिया है ! ॥३२॥

२६. अभय-माता

वास्तविक नाम पद्मावती। उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका। मगध-राज बिंबिसार से इसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम अभय रक्खा गया। अभय में बिंबिसार की बड़ी अनुरक्ति थी। बाद में अभय ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसके उपदेश से उसकी मां प्रव्रजित हुई। अभय ने जो उपदेश दिया था उसे गीतबद्ध कर और अपना भी एक श्लोक जोड़ अभयमाता ने ज्ञान के पूर्ण उन्मेष में गाया :

"माता ! अशुचि और दुर्गन्धमय इस काया को तू पैरों के
तलवों से ऊपर और मस्तक के केशों से नीचे तक प्रत्यवेक्षण

कर, ध्यान से अवलोकन कर।" ॥३३॥
इस शिक्षा में ध्यानस्थ होकर मैंने तदनुकूल आचरण किया।
देखो, वासना की जड़ को काट कर मैंने निर्वाण की परम
शांति का साक्षात्कार कर लिया! मेरी जलन मिट गई!
निर्वाण को प्राप्त कर आज मैं परम शांत हूं! ॥३४॥

२७. अभया

उज्जयिनी में उच्च कुल में जन्म। अभय-माता से घनिष्ठ प्रेम होने के कारण उसके प्रव्रजित होने पर स्वयं भी प्रव्रज्या ले ली। एक दिन अशुभ-भावना के लिए यह एकांत स्थान में गई; किन्तु वहां यह भय-विह्वल हो गई। भगवान् उस समय गंधकुटी में बैठे हुए थे; किन्तु उन्होंने अपने योगबल से ऐसा दिखा दिया मानो उसके सम्मुख ही बैठे हुए वे उपदेश कर रहे हैं। अभया अपनी ध्यान-पूत कल्पना में बुद्ध-वचन सुनती है :

"अभया! यह देह क्षण-भंगुर है। अज्ञानी जन इसमें
आसक्त हैं।
तू निश्चय कर कि सब प्रकार चित्त को स्थिर कर, ज्ञान और
स्मृति के साथ ही तू शरीर छोड़ेगी।" ॥३५॥
बड़े गम्भीर दुःखों से युद्ध करती हुई मैं अप्रमादिनी अन्त
में विजयिनी हुई। वासना की जड़ को मैंने तोड़ डाला, बुद्ध
के शासन को पूरा कर लिया ॥३६॥

२८. श्यामा—१

कौशांबी के एक प्रतिष्ठित नागरिक की पुत्री। कौशांबी-नरेश उदयन की पत्नी श्यामावती की प्रिय सखी। श्यामावती की मृत्यु से शोकाभिभूत होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली; किंतु शोक के प्रभाव से आर्य-मार्ग का सम्यक् अभ्यास नहीं कर सकी। एक दिन आनन्द के उपदेश का सुन कर उसने चित्त को एकाग्र करने का तीव्र प्रयत्न

आरम्भ किया। इसे अपने प्रयत्न में सफलता मिली, जिसके उल्लास में वह गाती है :

चार-पाँच बार, अप्राप्त चित्त-शांति को प्राप्त करने के लिए और विद्रोही मन को वश में करने के अभिप्राय से, मैं विहार से बाहर निकल कर इधर-उधर टहलने लगी ॥३७॥

आज आठवीं रात है, जब कि वासना से मुझे मुक्ति मिली ! बड़े गम्भीर दुःखों के साथ निरन्तर संग्राम करते हुए मुझ अप्रमादिनी को अन्त में जय मिली !

वासना का क्षय हो गया, बुद्ध का अनुशासन पूरा कर लिया गया ! ॥३८॥

तीसरा वर्ग

२९. श्यामा—२

कौशांबी में धनी घर में जन्म। श्यामावती की प्रिय सखी। उसकी मृत्यु के बाद शोकाभिभूत होकर उपर्युक्त श्यामा के समान ही संसार त्याग किया। २५ वर्ष तक आत्म-जय करने में अक्षम रही। वृद्धावस्था मे बुद्धोपदेश सुन कर तीव्र साधना की और अर्हत्त्व प्राप्त किया। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई गाती है :

पूरे पच्चीस वर्ष मुझे संसार त्याग किए हो गए, किन्तु कभी मैंने चित्त की शांति प्राप्त की हो, ऐसा मैं नहीं जानती ॥३९॥
चिर-ईप्सित चित्त-शांति को जब मैंने नहीं पाया, मेरा मन जब वशवर्ती नहीं हुआ,
तब उद्विग्न होकर मैंने सर्वविजयी (भगवान् बुद्ध) के पास जाकर उनके उपदेश को सुना ॥४०॥

बड़े गम्भीर दुःखों के साथ निरन्तर युद्ध करते हुए अन्त में मुझ अप्रमादिनी को जय मिली !
वासना का क्षय हो गया, बुद्ध का अनुशासन पूरा कर लिया गया !
आज सातवीं रात है, जबकि मेरी वासना का समूल उच्छेदन हो गया ! ॥४१॥

३०. उत्तमा

श्रावस्ती के एक धनाढ्य सेठ के घर में जन्म। पटाचारा के उपदेश से संघ में प्रवेश किया, किन्तु परम ज्ञान को प्राप्त करने में

असमर्थ रही। यह देख कर पटाचारा ने उसे विशेष उपदेश दिया। उसे सुन कर उत्तमा साधना में लग गई और परम ज्ञान का साक्षात्कार किया। ज्ञान के उन्मेष में वह अपने अनुभव का वर्णन करती हुई गाती है:

अ-प्राप्त चित्त-शांति को प्राप्त करने के लिए और विद्रोही मन को वश में करने के अभिप्राय से, चार-पाँच बार विहार से निकल कर मैं इधर-उधर बाहर टहलती रही। ॥४२॥

फिर उस भिक्षुणी के पास गई, वह जो मेरी श्रद्धेया धर्ममाता थी। उसने मुझे धर्मोपदेश दिया, स्कंध, आयतन और धातुओं का ज्ञान बतलाया! ॥४३॥

उस (महाभागिनी) के उपदेश को सुनकर, उसके अनुशासन के अनुसार ही, मैं एक सप्ताह भर एक आसन में बैठ कर ध्यान के आनन्द का अनुभव करती रही। प्रीति और सुख से मेरा मन भर गया। आठवें दिन जब मैंने आसन छोड़ा तो मेरा चित्त शांत था, मेरा अज्ञानांधकार छिन्न हो गया था! ॥४४॥

३१. उत्तमा—२

कोशल-प्रदेश में प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में जन्म। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई वह गाती है:

बुद्ध-शासन की अनुवर्तिनी होकर मैंने निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप बोधि के सात अङ्गों की भावना की, जैसा कि भगवान् बुद्ध ने उन्हें सिखाया। ॥४५॥

मेरे हृदय की इच्छा इस समय पूर्ण हो गई, मुझे शून्यता-ध्यान की प्राप्ति हो गई (लोभ, द्वेष और मोह से शून्य अवस्था की प्राप्ति हो गई)।

जो कुछ भी अनित्य, दुःख और अनात्म है, उसमें मेरी आसक्ति नष्ट हो गई!

अहो! मैं बुद्ध की हृदय से उत्पन्न कन्या हूँ।

मैं निर्वाण के प्रयत्न में सदा लीन हूं। ॥४६॥
मेरी सभी मानुषी और दैवी भोगेच्छाएँ नष्ट हो गईं !
मेरा आवागमन क्षीण हो गया, अब मेरा पुनर्जन्म होना नहीं है ! ॥४७॥

३२. दंतिका

श्रावस्ती के राजपुरोहित ब्राह्मण की कन्या। कुछ दिन जेतवन में निवास कर महाप्रजापती गोतमी से प्रव्रज्या ग्रहण की। राजगृह में रहते हुए एक दिन ध्यान के लिए वह गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर गई। वहाँ उसने एक हाथी को देख कर उसी को ध्यान का आलंबन बनाकर समाधि की अवस्था प्राप्त की। इसी दृश्य का वर्णन करती हुई वह कहती है :

दिन में विहार करने के लिए मैं बाहर निकली। जाकर गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर बैठ गई। वहाँ देखती हूँ कि एक हाथी जल में अवगाहन करने के बाद नदी के किनारे पर बैठा है। ॥४८॥
एक अंकुशधारी मनुष्य ने उसे आदेश दिया, "पैर पसार।"
हाथी ने पैर पसार दिया, पुरुष उस पर चढ़ गया। ॥४९॥
अ-दांत (हाथी) को दमित होते और मनुष्य की अधीनता स्वीकार करते देख, उस गंभीर अरण्य में प्रवेश कर मैंने भी अपने चित्त को दमित और वशीभूत कर लिया ! ॥५०॥

३३. उब्बिरी

श्रावस्ती में कुलीन घर में जन्म। अतिशय सुन्दरी होने के कारण कोशल-राज के अन्तःपुर में स्थान मिला। कुछ काल बाद एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम जीवंती रक्खा गया। राजा शिशु को देख कर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उब्बिरी को राज-महिषी का पद दे दिया, किंतु जीवंती थोड़े दिन हँस-खेल कर चल बसी। उब्बिरी बहुत शोकार्त

हुई। वह प्रतिदिन उस श्मशान में जाकर रोया करती जहां उसकी बच्ची जलाई गई थी। एक दिन वह भगवान् बुद्ध के समीप गई और उनके पैरों की पूजा कर एक ओर बैठ गई; किंतु शीघ्र ही वहां से उठकर चल दी और अचिरावती नदी के किनारे जाकर फिर उसी श्मशान में अपनी पुत्री के शोक में विलाप करने लगी। भगवान् बुद्ध ने गंधकुटी में ही बैठे हुए इस दृश्य को देखा और अपने योगबल से उब्बिरी के सम्मुख ही जैसे स्थित होकर उससे पूछा, "उब्बिरी! तू क्यों विलाप करती है?" उब्बिरी ने उत्तर दिया, "देव! मैं अपनी कन्या के लिए विलाप करती हूं।" भगवान् ने कहा, "उब्बिरी! इसी श्मशान में तेरी चौरासी हज़ार कन्याएँ जलाई गई हैं। बता, तू उनमें से किस कन्या के लिये विलाप कर रही है?" यह कह कर भगवान् ने अपने योग-बल से उसे उस श्मशान में उन-उन स्थानों को दिखाया जहां उसकी सहस्र-सहस्र कन्याएँ पूर्व जन्मों में जलाई गई थीं और कहा:

> 'अम्म जीवा' 'अम्म जीवा' कह-कह कर तू पागल हुई वन-वन मे विलाप करती हुई फिरती है। उब्बिरी! आत्मस्थ हो। तेरी चौरासी हज़ार जीवन्ती नाम की कन्याएँ इसी श्मशान में जलाई गई हैं। बता तू इनमें से किस जीवन्ती के लिए शोक करती है? ॥५१॥

भगवान् बुद्ध के उपर्युक्त वचन को सुनकर उब्बिरी को उद्बोध हुआ। वह ध्यान में लीन हो गई और उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। बाद में अपनी शोक-विमुक्ति की घोषणा करती हुई वह कहती है:

> मेरे हृदय में बिंधा हुआ तीर निकल गया!
> प्यारी पुत्री का शोक मेरे संपूर्ण जीवन को विषाक्त बनाए हुए था, मेरे प्राण हरण कर रहा था! ॥५२॥
> अब वह शोक नहीं रहा!

आज मेरा हृदय शांत है, आकुलता-रहित है,
मेरा चित्त आज निर्मल और शांतिपूर्ण है !
मैं सर्वज्ञ बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण लेती हूँ ! ।।५३।।

३४. शुक्ला

राजगृह नगर के एक प्रतिष्ठित नागरिक के घर में जन्म। धम्मदिन्ना से उपदेश ग्रहण कर संसार-त्याग किया। धर्म-प्रचार के कार्य में अत्यन्त कुशल थी। एक दिन राजगृह के भिक्षुणी निवास में अत्यन्त प्रभावशाली धर्मोपदेश दिया, जिससे श्रोतागण मंत्र-मुग्ध से हो गए। उपदेश के समाप्त होने पर उस आश्रम के एक वृक्ष पर रहने वाले देवता ने राजगृह में आकर शुक्ला के धर्मोपदेश की महत्ता का वर्णन करते हुए नागरिकों को उद्बोधित किया:

"राजगृह-निवासियो ! शुक्ला के द्वारा प्रचारित बुद्ध-वाणी को न सुन कर तुम यहां शराब पीकर मस्त हुए से क्यों सो रहे हो ? जाकर उस बुद्ध-शासन का उपदेश करने वाली की उपासना क्यों नहीं करते ? ।।५४।।
शुक्ला की मधुर, ओजपूर्ण, वाणी रूपी जीवनी-सुधा को ज्ञानी जन उसी प्रकार पान करते हैं, जैसे पथिकगण वर्षा के जल को।" ।।५५।।

वृक्ष-देवता की यह वाणी सुन कर नागरिकगण वहां दौड़े-दौड़े आए और शुक्ला के उपदेश को सुन कर संतृप्त हुए। अन्तिम समय शुक्ला के उपदेश और उसकी साधना की प्रशंसा करते हुए नागरिक-गण कहते हैं:

शुक्ला ! शुक्ल (उजले) धर्मों के अभ्यास से तू वासना से मुक्त हुई है। अब तू शांत-चित्त और अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है। मार और उनकी सेना को जीत कर तू यह अन्तिम देह धारण करती है ! ।।५६।।

३५. शैला

आलवी नगर के राजा की कन्या। पिता के प्रति दिए हुए बुद्धोपदेश को सुन कर धर्म-श्रद्धा उत्पन्न हुई। पहले उपासिका (गृहस्थ-शिष्या) के रूप में बुद्ध-धर्म में दीक्षित हुई। बाद में भिक्षुणी हो गई। श्रावस्ती में रहते हुए एक दिन मध्याह्न के विश्राम के लिए निकटवर्ती अंधवन में गई, जहां छद्मरूप-धारी मार उसे फुसला कर कहने लगा :

"शैला! लोक में मुक्ति जैसी कोई चीज नहीं है!
फिर निर्जन-वास से तुझे क्या लाभ ?
समय रहते भोग सुख का आनन्द ले।
अन्यथा पीछे पछतायेगी!" ॥५७॥

मार के ये प्रलोभन-कारी वचन सुन कर शैला ने सोचा—निश्चय ही यह मूढ़ मार मेरे मार्ग में बाधा डालने के लिए इस प्रकार की इन्द्रियासक्ति की बातें कह रहा है, किंतु यह नहीं जानता कि मैं अर्हत्व-प्राप्त साधिका हूँ। मैं इसे समुचित ही उत्तर दूँगी। ऐसा सोच कर भिक्षुणी ने कहा :

पापी मार! भोग का सुख तो मुझे भाले के प्रहार के समान
इस नश्वर देह को विद्ध करने वाला लगता है। ॥५८॥
जिसको तू विषयों का सुख कहता है, वह तो मेरे लिए घृणा
की चीज है!
पापी मार! मेरी भोगासक्ति सभी जगहों से दमित हो गई
है, मेरा अज्ञानांधकार विदीर्ण हो गया है!
पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले।
आज तेरा ही अन्त कर डाला गया! दुष्ट! तू मार दिया
गया! ॥५९॥

३६. सोमा

राजगृह में जन्म। राजा बिंबिसार के पुरोहित की पुत्री। विमुक्ति-

सुख को प्राप्त कर एक दिन समीपवर्ती अंधकवन में ध्यान के लिये बैठी थी कि मार ने उसे प्रलोभित करने के लिये और उसके मार्ग में बाधा डालने के लिए कहा :

"जो स्थान ऋषियों के द्वारा भी प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन है, उसे दो अंगुल-मात्र[1] प्रज्ञा वाली स्त्रियां प्राप्त कर लेंगी, यह कभी संभव नहीं।" ॥६०॥

भिक्षुणी ने मार को फटकारते हुए कहा :

जब चित्त अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है, जीवन नित्य ज्ञान में विद्यमान है अन्तर्ज्ञान-पूर्वक धर्म का सम्यक् दर्शन कर लिया गया है तो स्त्री होना इसमें हमारा क्या करेगा ? देख ! मैंने सभी जगह से अपनी वासना का संपूर्ण विनाश कर दिया है ! ॥६१॥

अज्ञानांधकार को विदीर्ण कर दिया है !

पापी मार ! प्राणियों का अन्त करने वाले ! समझ ले ! आज तेरा ही अंत कर दिया गया ! दुष्ट ! तू मार दिया गया ॥६२॥

---

१. आठ-दस वर्ष की अवस्था से ही स्त्रियां भात पकाना शुरू कर देती हैं, किन्तु भात कब पक गया, इसका वे ठीक निर्णय तबतक नहीं कर सकतीं जबतक दो-एक चावल हाथ से उठा कर वे अपनी दो उंगलियों से दबा कर नहीं देख लेतीं। इसीलिए उनका ज्ञान दो अंगुल-मात्र परिमित कहा गया है।

चौथा वर्ग

३७. भद्रा कापिलायिनी

सागल (वर्तमान स्यालकोट) नगर में कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण-कुल में जन्म । महाकाश्यप (पूर्व का नाम पिप्पलि माणवक) के साथ विवाह । दोनों पवित्र जीवन के अद्वितीय साधक । घर से निकल कर दोनों ने एक-दूसरे के बाल काट कर साथ-साथ प्रव्रज्या ली । बाद में अलग-अलग हो गए । भद्रा कापिलायिनी ने पाँच वर्ष तित्थियाराम में साधना करने के बाद महाप्रजापती से उपदेश ग्रहण किया । अर्हत्व प्राप्त कर उसने पूर्व के पति महाकाश्यप स्थविर के गुणों के वर्णन के साथ-साथ अपनी कृतकृत्यता का वर्णन करते हुए यह गाया है :

शांत, समाधि-निष्ठ, महाकाश्यप, भगवान् बुद्ध का उत्तरा-
धिकारी पुत्र है !
पूर्व-जन्मों को वह जानता है. जन्म और मृत्यु उससे कुछ
अविदित नहीं है ! ॥६३॥
अभिज्ञा की पूर्णता में वह स्थित है; उस मुनि का आवागमन
क्षीण हो गया ! तीन विद्याओं को जानने के कारण वह
त्रैविद्य है, (वास्तविक अर्थों में) ब्राह्मण है । ॥६४॥
भद्रा कापिलायिनी भी उसी के समान तीन विद्याओं को
जानने वाली है, मृत्युविजयिनी है ।
मार और उसकी सेना को जीत कर वह अन्तिम देह धारण
करती है ! ॥६५॥

सांसारिक जीवन के दोषों और दुष्परिणामों को देख कर हम दोनों ने संसार से संन्यास ले लिया ! आज हम दोनों ही आत्म-विजयी हैं, सर्वथा निष्पाप हैं, निर्वाण प्राप्त कर हम दोनों परम शांत हैं !
निर्वाण की परम शांति का हमने साक्षात्कार किया है ।।६६।।

पाँचवाँ वर्ग

३८. वड्ढेसी

जन्मस्थान देवदह नगर, कुल अज्ञात। महाप्रजापती गोतमी की सेविका के रूप में नियुक्त। महाप्रजापती गोतमी के साथ उसने भी प्रव्रज्या ले ली; किंतु प्रव्रज्या लेने के बाद २५ वर्ष तक काम-वासना से पीड़ित होती रही। एक मुहूर्त भर भी वह चित्त की एकाग्रता का साधन नहीं कर सकती थी। इस असमर्थता के कारण वह बाँहें पकड़-पकड़ कर रोती थी। एक दिन उसने भिक्षुणी धम्मदिन्ना का उपदेश श्रवण किया। इससे उसकी ऐन्द्रिय लालसा दूर हुई और उसने चित्त की शांति अनुभव की। थोड़े ही समय में उसने ध्यान का अभ्यास कर अर्हत्त्व प्राप्त किया। अपनी साधना की सफलता के उल्लास में वह कहती है:

गृहत्याग के बाद पच्चीस वर्ष तक मैंने मुहूर्त भर के लिए भी चित्त की शांति अनुभव नहीं की। ॥६७॥

मेरी प्रत्येक चिंता-धारा में काम की आसक्ति समाई हुई थी! शांति मुझे नहीं मिलती थी! दोनों बाँहें फैला कर रोती हुई मैं एक दिन विहार के अन्दर गई। ॥६८॥

वहाँ उस भिक्षुणी के पास गई जो मेरी श्रद्धेया धर्ममाता थी। वह मुझे धर्मोपदेश करने लगी।

उसने मुझे स्कंध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया। ॥६९॥

उसके धर्मोपदेश को सुन कर मैं एकांत में ध्यान के लिए बैठ गई।

इस समय अपने अतीत जन्म मुझे ज्ञात हैं, विशोधित हुए मेरे चक्षु दिव्य हैं। ॥७०॥

पर-चित्त-ज्ञान मुझे लब्ध है, विशोधित हुए श्रोतों से मैं अलक्ष्य वस्तुओं को भी श्रवण कर सकती हूँ। योग-विभूतियाँ भी मैंने प्राप्त कीं, चित्त की निष्पापता भी मैंने संपादित की, छह अभिज्ञाओं का मैंने साक्षात्कार किया, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा किया। ॥७१॥

३६. विमला

वैशाली की एक वेश्या (रूपूपजीविनी) की कन्या। वयः प्राप्त होने पर वह भी दूषित जीवन बिताने लगी। एक दिन उसने स्थविर महामौद्गल्यायन को लुभाने की दुश्चेष्टा की। जिस समय स्थविर महामौद्गल्यायन वैशाली में भिक्षा-चर्या कर रहे थे वह उनको देखकर उन पर आसक्त हो गई और उनके निवास-स्थान पर जाकर उन्हें लुभाने की चेष्टा करने लगी। स्थविर ने उसके अशुभ आचरण के लए उसे फटकारते हुए धर्मोपदेश किया। धर्मोपदेश को सुनते ही वेश्या के अन्दर लज्जा और ग्लानि की भावना उदय हुई। संघ से तो वह बहिर्भूत ही रही, किन्तु उपासिका (गृहस्थ-शिष्या) के रूप में वह दीक्षित की गई। बाद में ध्यान का अनुशीलन कर वह संघ में प्रवेश करने की अधिकारिणी मानी गई और उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। अपने जीवन-परिवर्तन का वर्णन करती हुई वह कहती है:

रूप-लावण्य, सौभाग्य और यश से मतवाली हुई, यौवन के अहंकार में मस्त, मै अज्ञानी, अपने को कितना गौरवमय समझती थी ॥७२॥

गहनों से शरीर को सजाये हुए, मै अनेक तरुण युवकों का आकर्षण बनती थी। वेश्या-गृह के द्वार पर सतर्क दृष्टि से बैठी हुई मैं व्याध के समान जालों का निर्माण करती थी ॥७३॥

लज्जा-शर्म को छोड़ कर मैं कपड़े उतार कर नंगी तक हो जाती थी, मनुष्यों के पतन के लिए मैं अनेक मायाएँ रचती थी ॥७४॥

वही मैं आज मुँड़े हुए सिर वाली हूँ, चीवर-वसना हूँ। वृक्षों के नीचे ध्यान-रत हुई, मैं अवितर्क ध्यान[1] को प्राप्त कर विहरती हूँ ॥७५॥

दैवी और मानुषी कामनाओं के सभी बंधन मेरे उच्छिन्न हो गये। सब पापों को मैंने दूर फेंक दिया, आज मैं निर्वाण की परम शांति का अनुभव कर रही हूँ, मैं निर्वाण-प्राप्त हूँ, परम शांत हूँ ॥७६॥

४०. सिंहा

वैशाली के सिंह सेनापति की भानजी। मामा के नाम पर इसका नाम 'सिंहा' रक्खा गया। सिंह सेनापति को जब भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया तो इसीको सुन कर यह विरक्त हो गई; किंतु महान् साधना करने पर भी सात वर्ष तक चित्त को शांति नहीं मिली। एक दिन हताश होकर सोचा—इस पापी जीवन से भी क्या? और एक वृक्ष में फाँसी लटका कर मरने को उद्यत हुई। जैसे ही फाँसी गले में बाँधी कि चित्त ध्यान-मग्न हो गया। वह उल्लास में गाती है :

असंगत विचार के कारण, मैं पहले भोग-तृष्णा से सदा ही पीड़ित रहती।

विद्रोही, वश मे न हुए, चित्त से मैं सदा ही छली जाती! ॥७७॥

चित्त-मलों से भरी हुई, मैं सुख स्वप्नों को ही देखा करती, किंतु भोग-तृष्णा मे चित्त को फँसा कर मैंने चित्त की शान्ति कभी नहीं पाई! ॥७८॥

---

1. ध्यान की द्वितीय अवस्था जिसमें सब वितर्कों का लोप हो जाता है, केवल सुख और प्रीति वर्तमान रहते हैं।

(चित्त-शांति को प्राप्त न कर सकने के कारण) मैं दिन-दिन कृश होने लगी, पीली पड़ गई, मेरा रंग फीका पड़ गया। इसी दुःखी अवस्था में मैं सात वर्ष तक जीवन-यापन करती रही। न दिन में न रात में, मुझ अभागिनी ने कभी सुख अनुभव किया। ॥७६॥

हताश होकर, एक दिन रस्सी को लेकर मैं घने बन के अंदर घुस गई।
सोचा, 'पुनः हीन आचरण करने से तो मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँ।' ॥८०॥

दृढ़ फाँसी लगा कर वृक्ष की शाखा में बाँध दी। जैसे ही मैं फाँसी अपने गले में डाल रही थी कि मेरा चित्त (कामासक्ति से) विमुक्त हो गया ! ॥८१॥

४१. सुन्दरी नंदा

कपिलवस्तु में शाक्य-राजवंश में जन्म। अतिशय रूपवती होने के कारण 'सुन्दरी' उपपद। 'जनपद-कल्याणी' (जनपद की सब से सुन्दरी स्त्री) भी कहलाती थी। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भगवान् बुद्ध के कपिल-वस्तु में आने पर शाक्य-राजकुमार नंद और राहुल तक जब प्रव्रजित कर लिए गए और राजा शुद्धोदन की मृत्यु पर महाप्रजापत्ती गोतमी भी जब भिक्षुणी हो गई तो नंदा ने सोचा, "जब मेरे वंश के सभी लोग प्रव्रजित हो गए तो मैं ही घर में रहकर क्या करूँगी?" वह भी भिक्षुणी हो गई; किंतु उसकी यह प्रव्रज्या श्रद्धा के कारण नहीं हुई थी, स्वजनों के प्रति प्रेम के कारण हुई थी। अतः अपने सौंदर्य में उसकी अभी तक आसक्ति बनी हुई थी। शास्ता के रूप-तिरस्कार के भय से वह अभिरूपा-नंदा के समान उनके सामने न जाती; किंतु शास्ता ने भी उसे अभिरूपा-नंदा के समान ही शिक्षित किया। तरुण युवती के क्रमशः वार्धक्य-भाव को देख कर सुन्दरी नंदा को जीवन की अनित्यता

और दुःख का साक्षात्कार हुआ और उसका चित्त वैराग्य में स्थित हो गया। भगवान् ने यह देख कर उसे निम्नलिखित उपदेश दिया:

"नंदा! अशुचि और व्याधि के समूह इस शरीर को तू देख।
एकाग्र चित्त और अच्छी प्रकार समाधि में स्थित होकर तू
अशुभ-भावना में चित्त को लगा। ॥८२॥
जैसी यह देह है, वैसी ही तेरी देह भी है: जो इस सौंदर्य का
परिणाम है, वही तेरे सौंदर्य का भी परिणाम होगा!
इस दुर्गंध-मय अपवित्र शरीर का यही परिणाम है! केवल
अज्ञानी लोग ही इसे अभिनंदनीय वस्तु समझते हैं। ॥८३॥
इसलिए, नंदा! रात-दिन अ-तंद्रित होकर तू इस काया का
इस प्रकार अवेक्षण कर।
इस प्रकार अवेक्षण करती हुई तू अपने ज्ञान की सहायता से
सौंदर्य के मोह से विमुक्त होकर सत्य को देखेगी।" ॥८४॥

इस उपदेश को सुन कर नंदा को ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसने उद्गार प्रकट करते हुए कहा:

शास्ता के उपदेश को सुन कर मैंने ठीक प्रकार से, अ-तंद्रित
होकर उसका चिंतन किया। जैसा इस काया का वास्तविक
स्वरूप .. मैंने ठीक तरह बाहर-भीतर से उसे वैसा ही
देख लिया। ॥८५॥
तब इस देह से मुझे निर्वेद उत्पन्न हुआ! मैं राग-मुक्त हो गई,
देह से अपनापन तोड़ दिया!
पुरुषार्थ-लीन, अनासक्त, उपशांत, आज मैं निर्वाण की परम
शांति का अनुभव कर रही हूँ!
आज मैं निर्वाण-प्राप्त हूँ, परम शांत हूँ! ॥८६॥

४२. नंदुत्तरा

कुरुराज्य में कम्मासदम्म नामक प्रसिद्ध कस्बे में ब्राह्मण वंश में जन्म। शिल्प और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। पहले निर्ग्रंथ साधुओं

के संघ में प्रवेश किया और वाग्मिता में अत्यन्त कुशलता प्राप्त की। बाद में महामौद्गल्यायन स्थविर से शास्त्रार्थ में परास्त होकर बुद्ध-मत की अनुयायिनी हो गई। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई कहती है :

अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और अन्य अनेक देवताओं की मैं पूजा-वंदना करती थी, नदी के घाटों पर जाकर जल में डुबकी भी लगाती थी ! ॥८७॥

आधे सिर का मुंडन, पृथ्वी पर सोना, रात्रि-भोजन का त्याग—इस प्रकार मैं अनेक व्रतो का पालन करती थी ! ॥८८॥

(साथ ही) विषय-वासना के उद्दीपन के लिए मैं गहनों से अपने को सजाती भी थी, सुगंधित लेप आदि भी लगाती थी। ॥८९॥

इस प्रकार इस काया को मैं आकर्षक बनाती थी !
जब देह के वास्तविक रूप का मुझे ज्ञान हो गया तो श्रद्धा के साथ घर से बेघर हो मैंने प्रव्रज्या ग्रहण की। अब भोग-कामना में मेरी आसक्ति जड़ से नष्ट हो गई। ॥९०॥

सभी बंधन विच्छिन्न हो गए,
इच्छाएँ और अभिलाषाएँ सभी नष्ट हुईं, मुझे चित्त की परम शांति मिली ! ॥९१॥

४३. मित्तकाली

कुरुराज्य में कम्मासदम्म नामक कस्बे में ब्राह्मण-वंश में जन्म। भिक्षुणी होकर भी सात वर्ष तक दान-ग्रहण और लाभ-सत्कार आदि में आसक्त हुई घूमती रही। बाद में वैराग्य प्राप्त हुआ और अध्यवसाय-पूर्वक साधना कर अर्हत्त्व-फल में प्रतिष्ठित हुई। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई गाती है :

श्रद्धापूर्वक घर से बेघर होकर मैंने प्रव्रज्या ली, फिर भी जगह-जगह लाभ और सत्कार पाने की इच्छा ही से विचरती रही। ॥९२॥

परमार्थ की अवहेलना कर मैं तुच्छ पदार्थ के ही सेवन में
लगी रही।
चित्त-मलों के वश में होकर मैंने प्रव्रज्या के वास्तविक प्रयो-
जन को पूरा करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। ॥६३॥
अपने छोटे से विहार में बैठ कर एक दिन मैंने उदासीनता-
पूर्वक विचार किया—हाय! तृष्णा के फंदे में पड़ कर मैं
उन्मार्ग-गामिनी हो गई! ॥६४॥
मेरा आयु-काल समाप्त होने को आया! प्राणहारी जरा और
व्याधि आसन्न हैं!
इस देह के लय हो जाने के पूर्व ही जो कुछ हो सके मुझे
करना चाहिए। अब प्रमाद का समय नहीं रहा। ॥६५॥
मैंने उसी समय स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश का यथाभूत
चिंतन किया. विमुक्त-चित्त होकर ही मैंने आसन छोड़ा!
मैंने बुद्ध-शासन को (पूरा) कर लिया! ॥६६॥

४४. सकुला

श्रावस्ती में ब्राह्मण-कुल में जन्म। सब से पहले जेतवन-आराम में भगवान् का उपदेश सुना। उस समय उपासिका होकर बाद में किसी क्षीणास्रव अर्हंत् के उपदेश को सुन कर भिक्षुणी हुई। दिव्य चक्षु-प्राप्त भिक्षुणियों में भगवान् ने इसे अग्रणी उद्घोषित किया। अपनी साधना का वर्णन करती हुई कहती है:

गृह-वास के समय ही एक भिक्षु के धर्मोपदेश को सुन कर
मैंने विमल, अच्युत पद, निर्वाण के दर्शन किए। ॥६७॥
पुत्र, कन्या, धन-धान्यादि सब मैंने छोड़ दिया,
केशों को कटवाकर बस मैंने घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली! ॥६८॥
शिक्षार्थिनी होकर उच्चतर मार्ग का अनुसरण मैं करने लगी,
राग-द्वेष और सभी चित्त-मलों को एकदम मैंने छोड़ दिया! ॥६९॥

भिक्षुणी-पद की उपसंपदा लेकर मुझे अपने पूर्व-जन्मों का
स्मरण हुआ,
ध्यान के उत्कर्ष में विशुद्ध, विमल, दिव्य दृष्टि भी मिली ! ।।१००।।
सभी संस्कारों को अनित्य. दुःख और अनात्म के रूप में
देखकर और उन्हें हेतुओं से उत्पन्न हुआ जानकर,
मैंने सब मलिनताओं को छोड़ दिया ।
मैं परम शांत हुई,
मैंने निर्वाण की परम शांति का साक्षात्कार किया ! ।।१०१।।

४५. सोणा

श्रावस्ती में एक कुलीन घर में जन्म। विवाहोपरांत वह दस संतानों की माता हुई। इसलिए 'बहुत पुत्रों वाली' (बहुपुत्तिका) के नाम से भी प्रसिद्ध हो गई। पति के प्रव्रजित होने पर उसने सारी धन-सम्पत्ति पुत्रों में वितरण कर दी, अपने लिए कुछ नहीं रक्खा। अल्प काल में ही पुत्र और उनकी बहुएँ उसका निरादर करने लगीं। "जिस घर में मेरा सम्मान नहीं, उसमें रह कर क्या करूँ ?"—ऐसा सोचकर वह भिक्षुणी-संघ में प्रविष्ट हो गई। चूँकि वृद्धावस्था में संसार त्याग किया था, इसलिए अविचलित चित्त-शांति को प्राप्त करने के लिए बड़ा तीव्र अध्यवसाय करना पड़ा; किंतु वह परीक्षा में सफल रही। भगवान् ने उसके दृढ पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस प्रकार के जीवन का एक दिन भी शतवर्ष के दीर्घ आयुष्य से अधिक श्रेयस्कर है। दृढ अध्यवसाय करने वाली भिक्षुणी-साधिकाओं में भगवान् ने सोणा को अग्रणी उद्घोषित किया था। अर्हत्त्व-प्राप्ति के उल्लास में सोणा अपने जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुई गाती है :

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के मिलन-क्षेत्र इस
शरीर में, मैंने दस पुत्रों को पैदा किया !
फिर दुर्बल और जीर्ण होकर मैं एक भिक्षुणी के पास गई। ।।१०२।।

उसने मुझे स्कंध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया।
उसके धर्मोपदेश को सुनकर मैं केश कटवा कर प्रव्रजित हो गई। ॥१०३॥
उसकी विद्यार्थिनी होकर साधना करते हुए अपने चक्षुओं को शोधित कर मैंने दिव्य बना लिया।
आज मैं अपने पूर्व-जन्मों को, जहाँ-जहाँ मैंने जन्म धारण किए, स्मरण करती हूँ। ॥१०४॥
एकाग्र, समाधि-निष्ठ, होकर मैं संसार के सारे पदार्थों को अनित्य, दुःख और अनात्म के रूप में देखती हूँ।
मुक्ति-प्राप्त और अनासक्त होकर मैंने निर्वाण में प्रवेश किया है! ॥१०५॥
पंच स्कंधों की जड़ मैंने काट दी है।
उनकी परिपाटी अब संसार के रूप में कैसे प्रवाहित होगी?
मैं अचल और पुनर्जन्म-हीन हूँ! अब मेरा दूसरा जन्म होना नहीं है! ॥१०६॥

४६. भद्रा कुण्डलकेशा

राजगृह के एक सेठ की लड़की। भद्रा वास्तविक नाम; कुण्डलकेशा नाम भिक्षुणी होने के बाद पड़ा। वयः प्राप्त होने पर एक दिन उसने देखा कि पुलिस के सिपाही उसी नगर के राजपुरोहित के पुत्र सत्थुक को चोरी के अपराध में मारने के लिए ले जा रहे हैं। भद्रा उस पर प्रेमासक्त हो गई। उसने खाना-पीना छोड़ कर यह प्रण ले लिया, "यदि मैं इसे पाऊँगी तो जीवन धारण करूँगी, अन्यथा मर जाऊँगी।" उसका पिता जो उस नगर का कोषाध्यक्ष था, पुत्री की इस विचित्र प्रतिज्ञा से बड़ा चिंतित हुआ। किन्तु बेटी से उसे बड़ा स्नेह था, इसलिए रिश्वत देकर उसने किसी प्रकार अपराधी को मुक्त करवा लिया। रत्नाभरणों से अलंकृत कर भद्रा उसे समर्पित कर दी गई। कुछ

दिन आनन्द से बीत जाने पर सत्थुक ने भद्रा के रत्नाभरणों को लेने की लिप्सा की। उसने भद्रा से कहा, "जिस समय मैं वध के लिए वध-स्थान पर ले जाया जा रहा था, उस समय मैंने उस स्थान के देवता से यह मनौती की थी कि यदि किसी प्रकार मेरी प्राण-रक्षा हो जायगी तो मैं उसकी पूजा करूँगा। भद्रा! तू पूजार्थ अर्घ्य तैयार कर।" भद्रा ने प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य की तैयारी कर दी और वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित होकर पति के साथ चल दी। दुष्ट ने भद्रा की सेविकाओ को लौटा दिया और उसे अकेले ही लेकर पर्वत पर चढने लगा। उसका रुख भी कुछ-कुछ बदलने लगा। फिर भी भद्रा उसमें अत्यधिक प्रेमासक्त होने के कारण उसके अभिप्राय को ठीक-ठीक नहीं जान सकी। दुष्ट ने कहा, "भद्रा, साड़ी के अलावा तू अपने सब गहने उतार दे।" भद्रा ने कंपित होकर पूछा, "स्वामिन्, मेरा क्या अपराध है?" दुष्ट ने उत्तर दिया, "तू अपने मन मे क्या समझती है? क्या मैं यहां अर्घ्य देने के लिए तुझे लाया हूँ? नहीं, मैं यहां तेरे गहने लेने आया हूँ।" "किन्तु प्रिय स्वामिन्! किसके ये गहने और किस की मैं हूं?" परन्तु दुष्ट पर इस विनती का कुछ असर न हुआ। उसने कहा, "यह मै कुछ नहीं जानता।" भद्रा भी व्युत्पन्नमति स्त्री थी। वह पति के कहने के अनुसार ही करने को तैयार हो गई, किन्तु उसने प्रार्थना की, "आर्य! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। किन्तु मेरी एक इच्छा पूरी करो। मुझे वस्त्राभूषण पहने हुए ही एक बार अपना आलिंगन करने दो।" धूर्त इस पर प्रस्तुत हो गया। आलिंगन करने का छल कर भद्रा ने उसको ऐसा धक्का दिया कि वह पहाड़ से नीचे जा गिरा और मर गया। उसकी चतुरता को देख कर उस स्थान पर रहने वाले देवता ने प्रसन्न होकर कहा, "सभी जगहों पर मनुष्य ही चतुर नहीं हुआ करता, कहीं-कहीं स्त्री उससे भी अधिक चतुर हो जाती है।" इसके उपरांत भद्रा ने सोचा, "अब इस अवस्था में घर लौट कर जाना मेरे लिए ठीक नहीं। मैं संसार त्याग करूँगी।"

ऐसा सोच कर उसने निर्ग्रंथ साधुओं के एक आश्रम में जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की। वहां उसके केशों का लुंचन किया गया, जिसके बाद वे फिर कुंडल के आकार में घुंघराले होकर उगे। इसीलिए उसका नाम 'कुंडलकेशा' पड़ गया। निर्ग्रंथ साधुओं के आश्रम में रहते हुए भद्रा कुंडलकेशा ने तर्क-शास्त्र का अध्ययन किया था। वह बड़ी वाग्मी और तर्ककुशल हो गई थी। आश्रम की शिक्षा समाप्त कर वह वादविवाद करती हुई ज्ञान की खोज में इधर-उधर घूमने लगी। शास्त्रार्थ करने में वह इतनी कुशल थी कि अपने सामने किसी को ठहरने नहीं देती थी। एक बार धर्म-सेनापति सारिपुत्र से उसका साक्षात्कार हुआ। दोनों में धर्म के विषय में संलाप होने लगा। भद्रा ने सारिपुत्र से अनेक प्रश्न पूछे जिनके उन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दे दिए। अन्त में सारिपुत्र ने उससे एक प्रश्न पूछा, "एक वस्तु क्या है?" भद्रा कुछ उत्तर न दे सकी। सारिपुत्र के पैरों पर पड़ कर उसने प्रार्थना की, "भंते! मैं आपकी शरण लेती हूँ।" सारिपुत्र ने कहा, "भद्रा! मेरी शरण न ले। भगवान बुद्धदेव ही मनुष्यों में सर्वोत्तम पुरुष हैं। वही सब के शरण्य हैं। तू उनके निकट जाकर उन्हीं की शरण ले।" भद्रा ने भगवान् के दर्शन कर उनकी शरण ली। थोड़े ही समय में उसने अर्हत्व प्राप्त किया। निर्वाण की परम शांति का साक्षात्कार करते हुए उसने कहा है:

छिदरे म्लान केश वाली, कीचड़ में सनी हुई,
केवल एक वस्त्र पहने हुए, पहले मैं घूमती रहती थी।
जो छोड़ने योग्य कर्म थे, वही मैं करती थी,
जो करने योग्य कर्म थे, वही मैं नहीं करती थी। ॥१०७॥

दिन के विश्राम के उपरांत एक दिन बाहर निकल कर मैं
गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर गई।
वहां मैंने भिक्षु-संघ से पूजित, विमल, भगवान बुद्ध को
देखा। ॥१०८॥

घुटने टेक कर मैंने अंजलि बाँधी और सामने जाकर भगवान्
की पूजा की।
"आ भद्रा!" ऐसा उन भगवान् ने मुझसे कहा!
यही मेरी (भिक्षुणी-पद की) उपसंपदा हुई! ॥१०९॥
तब से अंग, मगध, वज्जी, काशी और कोशल प्रदेशों में मैं
लगातार पचास वर्ष तक घूमती रही,
इस इतने समय तक ऋण-मुक्त (अर्हत्) होकर ही मैंने राष्ट्र
का अन्न खाया। ॥११०॥
इस ज्ञानी उपासक ने बड़ा भारी पुण्य कमाया।
जिसने भद्रा के लिए चीवर-दान किया,
भद्रा, जो सब मलिन गंधों से मुक्त हो गई! ॥१११॥

४७. पटाचारा

श्रावस्ती के एक सेठ की पुत्री। वयः प्राप्त होने पर एक नौकर के प्रेम में फँस गई। विवाह होने से पहले ही उसके साथ भाग गई। दोनों एक नगले में जाकर रहने लगे। कुछ समय बाद जब गर्भवती हुई तो अपने माता-पिता के घर जाने की इच्छा पति से प्रकट की। किन्तु पति ने बहाने बना कर टाल-मटोल कर दी। किन्तु वहाँ प्रसव का समुचित प्रबन्ध न देख कर सेठ की पुत्री अपने पति से बिना पूछे ही अपने मायके को चल दी और पड़ोस वालों से कह गई कि यदि उसका पति पूछे कि कहाँ गई तो कह दें अपने माता-पिता के घर चली गई। जब उसका पति लौट कर आया तो उसके विषय में बड़ा चिंतित हुआ। सोचने लगा "मेरे ही कारण इस कुल-कन्या की यह अनाथों की सी दुर्गति हुई।" वह भी उसके पीछे-पीछे चल दिया और रास्ते में वह उसे मिल गई। रास्ते में ही उसको प्रसव भी हुआ। दोनों पति-पत्नी प्रसन्नता पूर्वक घर लौट आए। दूसरी बार जब वह गर्भवती हुई तो फिर इसी प्रकार चल दी। इस बार जब वे दोनों

जंगल में ही थे एक बड़ा तूफ़ान आया और घोर वर्षा होने लगी। कोई आश्रय लेने योग्य स्थान नहीं था। प्रसव भी होने को ही था। पटाचारा की प्रार्थना पर उसका पति शरण-स्थान बनाने के लिये लकड़ी काटने चला गया। जब वह लकड़ी काट ही रहा था, वहीं झाड़ी के समीप एक साँप ने उसे डस लिया। वह तत्काल वहीं मर गया। इधर रात को पटाचारा को प्रसव हुआ और बेचारी निराश्रय होकर भयङ्कर वर्षा में वहीं पड़ी रही। सवेरे पति की तलाश में निकली तो उसे मरा पाया। "हाय! मेरे ही कारण मेरे पति की मृत्यु हो गई!" विलाप करती हुई वह अपने पिता के घर को ही चलने को प्रस्तुत हुई। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। परन्तु दोनों बच्चों को लेकर पार कैसे उतरे? शरीर में भी बिलकुल शक्ति नहीं थी। बड़े पुत्र को इधर नदी के किनारे पर ही रख कर वह छोटे शिशु को लेकर दूसरे किनारे पर गई और उसे एक कपड़े में लपेट कर एक झाड़ी में रख दिया। फिर बड़े पुत्र को लेने के लिए वह नदी को पार करने लगी। किन्तु उसकी दृष्टि झाड़ी में रक्खे हुए छोटे बच्चे की ओर ही लगी हुई थी। अभाग्यवश एक बाज ने सद्यःजात शिशु को मांसपेशी समझ कर उस पर झपट मारी। पटाचारा जल के बीच में थी। बड़ी तालियाँ दीं, चीत्कार किया किन्तु कुछ परिणाम नहीं हुआ। हाँ, इधर रक्खे हुए सयाने बच्चे ने सोचा कि माँ मुझे ही ताली देकर बुला रही है। वह झट पानी में कूद पड़ा और बह गया। एक बच्चे को बाज मार गया, दूसरा पानी में बह कर मर गया! अब तो पटाचारा शोक में पागल ही हो गई। वह रो-रोकर चिल्लाने लगी—मेरा पति रास्ते में मर गया, एक पुत्र बाज ने मार दिया, दूसरा जल में डूब कर मर गया। विलाप करती हुई वह श्रावस्ती के मार्ग में चली जाती थी कि उसे एक पथिक मिला। उससे उसने पूछा, "भाई! तू कहां का रहने वाला है?" उसने कहा, "मां! मैं श्रावस्ती का रहने वाला हूँ।" माता-पिता का कुशल-समाचार पूछने पर पथिक ने कहा, "मां! आज रात को सेठ, उसकी भार्या

और उसका पुत्र तीनों प्राणी घर की छत गिर जाने से मर गए और अभी एक ही चिता में जलाने को श्मशान-भूमि में ले जाए जा रहे हैं। देख, यह धुंवा उनका ही दिखाई देता है।" पटाचारा पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी। उसे अपनी देह का होश नहीं रहा। वह विक्षिप्त होकर इधर-उधर घूमने लगी। बस कभी-कभी उसे लोग यही चिल्लाते सुनते थे—दोनों पुत्र मर गये, पति रास्ते में मर गया, माता-पिता और भाई एक ही चिता में जलाए जाते हैं।" उसको अपने वस्त्रों तक का होश न था। वस्त्रों के उसके शरीर से सरक जाने के कारण, और इस प्रकार लज्जा आदि की कोई भावना उसके अन्दर न होने के कारण उसका नाम 'पटाचारा' पड़ा। जिस समय वह पगली होकर इधर-उधर घूम रही थी और लोग उसे शरण न देते थे, भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन-आराम में विहर रहे थे। पटाचारा भी उधर बहकती हुई आ निकली। आश्रम-वासियों ने कहा, "इस उन्मत्त स्त्री को इधर न आने दो", किन्तु भगवान् ने उसे देख लिया और कहा, "इसे मत रोको, इसे इधर आने दो।" जैसे ही पटाचारा भगवान् के समीप आई भगवान् ने कहा, "भगिनी! चैतन्य लाभ कर! तू अपनी खोई स्मृति को पुनः प्राप्त कर।" भगवान् बुद्ध की कृपा के अनुभाव से पटाचारा को होश आ गया। वस्त्र-हीन होने के कारण उसे लज्जा की भावना भी अनुभव होने लगी। किसी ने उस पर वस्त्र डाल दिया, जिसे उसने पहन लिया। शास्ता के पैरों पर पड कर फूट-फूट कर रोने लगी, पाँच बार प्रदक्षिणा कर बोली, "देव! मेरी रक्षा करो! मेरे एक पुत्र को बाज मार गया, दूसरा पुत्र नदी में डूब कर मर गया। पति रास्ते में मर गया। मेरे पिता, माता, भाई एक ही चिता में जलाए गए। देव! मेरी रक्षा करो।" भगवान् ने आश्वासन देते हुए कहा, "पटाचारे! चिंता मत कर। तू ऐसे ही व्यक्ति के समीप आ गई है जो तेरी रक्षा करने में समर्थ है।" भगवान् ने पटाचारा को धर्मोपदेश दिया जिससे उसके चित्त को शांति मिली। भगवान् ने आगे कहा, "पटा-

ओरे ! तेरे पुत्र आदि तेरी शरण नहीं हो सकते। तू अपने शील को विशुद्ध कर। निर्वाणगामी मार्ग की पथिक बन। यही तेरे लिए उत्तम शरण होगी।" उपदेश के अनन्तर ही पटाचारा स्रोत आपन्न फल में प्रतिष्ठित हो गई। भिक्षुणियों के पास जाकर साधना करने लगी। एक दिन घड़े में पानी भर कर पैर धो रही थी। पैर धोकर उसने पानी फेंका तो देखा कि कुछ दूर जाकर वह सूख गया। फिर दूसरी बार फेंका तो वह उससे कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। तीसरी बार फेंका तो वह उससे भी कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। इस दृश्य को देख कर पटाचारा सोचने लगी, "इसी प्रकार कुछ प्राणी प्रथम वयस् में भी मरते हैं, कुछ मध्यम वयस् में भी मरते हैं, कुछ अन्तिम वयस् में भी मरते हैं। सभी अनित्य हैं।" इसी पर विचार करते हुए उसने अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया। अर्हत्त्व प्राप्त कर अपने साधना-संपन्न जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुई पटाचारा कहती है :

हल से भूमि को जोत कर मनुष्य उसमें बीज बोते हैं,
इस प्रकार अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन करते हुए वे धन उपार्जन करते हैं। ॥११२॥
तो फिर क्यों न मैं साधिका निर्वाण को प्राप्त कर पाती ?
मैं, जो कि शील से सम्पन्न हूं, अपने शास्ता के शासन को करने वाली हूं।
अप्रमादिनी हूं, अचंचल और विनीत हूं। ॥११३॥
एक दिन पैर धोने के बाद मैंने फेंके हुए पानी को ऊँची जगह से नीची जगह की ओर जाते देखा,
मैंने अपने चित्त को, श्रेष्ठ जाति के घोड़े को सवारी में शिक्षित करने के समान, समाधि में लगाया। ॥११४॥
फिर मैं दीपक लेकर विहार के कोठे के अन्दर गई। वहां जाकर प्रकाश में चारपाई पर बैठ गई और दीप-शिखा पर ध्यान करने लगी। ॥११५॥

फिर सुई लेकर दीपक की बत्ती को जैसे ही नीची करने के लिए तेल में डुबोने लगी कि दीपक बुझ गया।
दीपक का निर्वाण प्राप्त करना था कि उसके साथ ही मेरे चित्त का भी निर्वाण हो गया!
तृष्णा की लौ सदा के लिये बुझ गई! ॥११६॥

४८. पटाचारा की शिष्या तीस भिक्षुणियाँ

भिन्न-भिन्न स्थानों में जन्म। एक दिन पटाचारा ने उन्हें उत्साहित करते हुए उपदेश दिया, जिसे सुन कर वे पुरुषार्थ में लग गईं और शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त किया। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई वे कहती हैं:

"लोग मूसलों से अन्न कूट-कूट कर अपने स्त्री-पुत्रादि का पोषण करते और धन कमाते हैं ॥ ११७॥
तो फिर तुम भी बुद्ध के शासन का अभ्यास क्यों न करो, जिसे करके पछताना नहीं होता।

अभी शीघ्र पैर धोकर, एकांत ध्यान में बैठ जाओ, चित्त की समाधि से युक्त होकर, बुद्ध-शासन को पूरा करो।" ॥११८॥
पटाचारा के शासन के इन वचनों को उससे सुनकर, हम सब पैर धोकर एकांत मे ध्यान के लिए बैठ गईं, और चित्त की समाधि से युक्त होकर हमने बुद्ध-शासन को पूरा किया। ॥११९॥
रात्रि के प्रथम याम में हम ने अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण किया, रात्रि के मध्यम याम में हम ने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया, रात्रि के अंतिम याम में अंधकार-पुंज को विनष्ट कर दिया। ॥१२०॥
समाधि से उठ कर हम सब ने पटाचारा के पैर छुए और कहा, "देवी, आप का अनुशासन पूरा किया!

संग्राम में विजय-प्राप्त इंद्र की जिस प्रकार तीनों[1] देवता पूजा करते हैं, उसी प्रकार हम तीसों आपकी पूजा करेंगी।
देवी ! (आपकी शिक्षा से) हम सब आज तीनों विद्याओं की ज्ञाता हैं, सब चित्त-मलों से रहित हैं।" ॥१२१॥

४६. चंद्रा

किसी ब्राह्मण-घर में जन्म। उसके जन्म होते ही उस घर में बड़ी दरिद्रता आ गई। बालकपन बड़े दुःख में बीता। जब कुछ सयानी हुई तो उस घर में एक बड़ी भयानक संक्रामक बीमारी फैली और एक-एक करके उसके सब आत्मीय जन मर गए। चन्द्रा भिखारनी हो गई। वह दरवाज़े-दरवाज़े भीख माँगती फिरती थी। एक दिन वह पटाचारा के समीप आ निकली। उसके कुछ पहले ही पटाचारा ने आहार समाप्त किया था। किन्तु इस क्षुधार्त बुढ़िया की दुर्दशा देख कर उसने उसके लिए भोजन का प्रबन्ध किया। पटाचारा और अन्य भिक्षुणियों के अत्यंत शिष्ट और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार को देख कर चंद्रा उनसे बहुत प्रभावित हुई। उसने पटाचारा से उपदेश ग्रहण किया और उसके साथ ही रहने लगी। कालांतर में उसने ज्ञान प्राप्त किया। अपने पूर्व जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुई वह कहती है :

विधवा और निस्संतान, मैं पहले बड़ी मुसीबत में पड़ी थी।
मित्र मेरे कोई नहीं थे, जाति वाले मेरे कोई नहीं थे।
भोजन और वस्त्र भी मैं नहीं पाती थी। ॥१२२॥
लकड़ी और भिक्षा-पात्र लेकर मैं घर से घर भिक्षा माँगती फिरती थी;
गर्मी और सर्दी से व्याकुल हुई, मैं सात वर्ष तक इसी प्रकार घूमती रही। ॥१२३॥

---

१. तेतीस देवताओं (त्रायस्त्रिंश) के लिये यहाँ भिक्षुणियों की संख्या तीस होने के कारण तीस ही कह दिया गया है।

एक दिन एक भिक्षुणी के मुझे दर्शन हुए।

उसने मुझे भोजन और जल देकर अनुगृहीत किया।
फिर मैंने उसके पास जाकर प्रार्थना की, "मैं प्रव्रज्या लूंगी!" ॥१२४॥

उस दयामयी पटाचारा ने अनुग्रहपूर्वक मुझे प्रव्रज्या दी।
फिर धर्मोपदेश देकर उसने मुझे परमार्थ में लगाया। ॥१२५॥
उसके उपदेश को सुन कर, मैंने उसके अनुशासन को पूरा किया।

अहो! अमोघ था देवी का उपदेश! मैं आज तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूं!
सब चित्त-मलों से विमुक्त हूं! ॥१२६॥

छठा वर्ग

५०. पटाचारा की पाँच सौ भिक्षुणी शिष्याएँ

विभिन्न कुलों में जन्म। सभी ने विवाहित होकर पारिवारिक जीवन व्यतीत किया। किन्तु सन्तान-वियोग का दुःख सभी को सहना पड़ा। अतः शोकाभिभूत होकर उन्होंने पटाचारा का शिष्यत्व स्वीकार किया। पटाचारा ने उनको क्या उपदेश दिया और उसका उन पर क्या असर पड़ा, इसी का दिग्दर्शन इस गीत में है :

वह किस पथ से आया, किस पथ से चला गया !
इतना तक जिसके विषय में तू नहीं जानती;
तब उसके लिए जो तेरे पास कुछ समय के लिए था,
तू 'मेरा पुत्र ! मेरा पुत्र !" कह-कह कर क्यों रोदन करती है ? ॥१२७॥
वह कौन पथ से आया, कौन पथ से चला गया।
इतना यदि तुझे ज्ञात भी हो;
तो भी तू रोदन क्यों करे ?
यह तो प्राणियों का स्वभाव ही है !॥ १२८॥
बिना पूछे वह आया था,
बिना आज्ञा लिए चला गया !
कतिपय दिनों के लिए वह कहीं से आया था,
कतिपय दिन ठहर कर वह फिर कहीं चल दिया ! ॥१२९॥
एक पथ से आगमन, दूसरे पथ से गमन,

यहाँ एक मार्ग से आया, यहाँ से दूसरे मार्ग से चला गया !
मृत्यु होने पर प्राणी यही रूपांतर किया करता है;
जिस रूप में उसका आगमन, उसी रूप में उसका गमन,
फिर शोक किस के लिए ? ।।१३०।।
पुत्र-शोक रूपी जो सूक्ष्म शल्य मुझ दुखिया के हृदय में गहरा छिदा हुआ था,
वह मुझे मारे डालता था,
वह आज निकल गया। ।।१३१।।
आज मेरा हृदय शांत है,
मैं परिनिर्वृत्त हुई,
आज मैं मुनि बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण लेती हूं। ।।१३२।।

५१. वाशिष्ठी

वैशाली के एक प्रतिष्ठित घर में जन्म। कुलीन पति से विवाह एवं सुखमय गृहस्थ जीवन। किंतु पुत्र के प्रथम वयस् में मर जाने के कारण सारा सुख नष्ट। पुत्र-शोक मे पागल हो गई। पति और अन्य आत्मीय जन जब उसे समझा-बुझा रहे थे, तो आर्तनाद करती हुई वह स्मृति-विहीन हो गई और घर से चल दी। इधर-उधर घूमती वह मिथिला आ निकली जहां उस समय भगवान् तथागत ठहरे हुए थे। वाशिष्ठी ने तथागत के दर्शन किए। उस समय भगवान् रास्ते में चल रहे थे। उनके शांत, संयतेंद्रिय रूप का वाशिष्ठी के चित्त पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह स्वस्थ हा गई। भगवान् ने उसे संक्षिप्त धर्मोपदेश किया। वाशिष्ठी ने संघ-प्रवेश की अनुमति माँगी। भगवान् के आदेश से वह प्रव्रजित की गई। अध्यवसायपूर्वक साधना करते हुए वाशिष्ठी ने शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त किया। अपने जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुई वह आनन्द में गाती है :

पुत्र-शोक से दुःखी, विक्षिप्त चित्त वाली, संज्ञा-विहीन,
नंगी, बालों को बिखेरे हुए, मैं इधर-उधर घूमती थी। ॥१३३॥
कभी जंगली रास्तों में, कभी कूड़े-करकट के ढेरों में, कभी स्तूपों में, कभी मरघटों में, कभी रथों के मार्गों में, भूख और प्यास से सताई हुई मैं तीन वर्ष तक घूमती रही! ॥१३४॥
फिर मैंने मिथिला नगर को जाते हुए उन सुन्दर गति वाले भगवान् बुद्ध के दर्शन किए।
भगवान् सुगत, जो कि अ-दांतों को दमन करने वाले, पूर्ण निर्भय पुरुष, और सम्यक् संबुद्ध हैं। ॥१३५॥
स्वस्थ होकर मैं उनकी वंदना करने के लिए बैठी।
उन भगवान् गोतम ने अनुकंपा पूर्वक मुझे उपदेश दिया! ॥१३६॥
उनके उपदेश को सुनकर मैं घर छोड़ बे-घर हो प्रव्रजित हो गई।
शास्ता के वचन का पालन कर मैंने मंगलमय पद (निर्वाण) का साक्षात्कार किया,
मैं सर्वोत्तम मंगल की अधिकारिणी हो गई! ॥१३७॥
अब मेरे सब शोक दूर हो गए!
वह वस्तु ही मुझे ज्ञात हो गई,
जिससे शोक की उत्पत्ति होती है! ॥१३८॥

५२. खेमा

सागल की राज-कन्या। अतीव सुन्दरी और स्वर्णवर्णा। मगध-राज बिंबिसार से विवाह। शास्ता एक दिन वेलुवन आए। सारा राज-परिवार उनके दर्शन के लिए गया। किन्तु रूपगर्विता खेमा नहीं गई क्योंकि वह जानती थी कि भगवान् बुद्ध रूप-सौंदर्य की तुच्छता दिखाते हैं। किसी प्रकार राजा के आग्रह से वह उद्यान की शोभा दिखाने के बहाने से वहां ले जाई गई। अकस्मात भगवान् बुद्ध के दर्शन भी वहां

उसे हो गए। शास्ता ने उसे रूप-गर्व की निस्सारता दिखाने के लिए अपने अलौकिक योग-बल से एक अप्सरा को पैदा किया। अप्सरा भगवान् को पंखा झल रही थी। उसे देख कर खेमा ने अपने मन में सोचा, "इस प्रकार की अप्सराएं और देव-रमणियाँ भगवान् को घेरे रहती हैं, मैं तो इनकी दासी होने के भी योग्य नहीं। मेरे रूप-अभिमान ने तो मुझे नष्ट कर दिया।" वह उस अप्सरा की रूप-सम्पदा को एकटक देखती खड़ी रही। भगवान् के योग-बल से वह अप्सरा प्रथम वयस् से मध्यम वयस् में परिणत हुई और, फिर बाद में बुड्ढी दिखाई देने लगी—पोपले मुखवाली, कांतिहीन, पके बाल वाली, क्षीण, दुर्बल! पंखा भी उसके हाथ से गिर पड़ा और उसके साथ ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। खेमा, जो यह सब दृश्य देख रही थी, सोचने लगी, "हाय! सौंदर्य का क्या यही परिणाम है? मेरी भी देह का यही परिणाम होगा!" भगवान् ने ठीक समय जान कर उसे उपदेश दिया। उपदेश के अनन्तर ही उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गई। बाद में प्रव्रजित होकर खेमा भगवान् बुद्ध की सबसे बड़ी प्रज्ञावती भिक्षुणी हुई। एक दिन खेमा वृक्ष के नीचे आसन मारे ध्यान में लीन थी, जब कि मार ने एक युवा पुरुष के रूप में आकर उसे लुभाने की चेष्टा की। उन दोनों का सम्वाद और किस प्रकार खेमा ने अपनी अद्भुत ज्ञान-साधना से उस पर विजय प्राप्त की, खेमा इन पंक्तियों में हमारे लिए छोड़ गई है:

"खेमा! तू रूपवती युवती है, मैं भी रूपवान् युवक हूं।
चल खेमा! पंचविध तूर्य ध्वनि के साथ हम यहां विषय-सुख का आनन्द लें!" ॥१३९॥
"इस घृणित, व्याधि के घर, क्षण-भंगुर शरीर से विषय सुख अनुभव करने में मुझे घृणा आती है, मैं लज्जा अनुभव करती हूं;
मैंने काम-तृष्णा की जड़ को काट दिया है! ॥१४०॥

देख, यह काम-तृष्णा भाले के समान विद्ध करने वाली है; ये स्कंध-समूह छुरी के समान काटने वाले हैं: जिसे तू भोग का आनन्द कहता है वही मेरे लिए घृणा का उत्पादक है! ॥१४१॥
सब प्रकार की भोग-तृष्णा का मैंने विनाश कर दिया है, अंधकार-पुंज को हटा दिया है!

पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले! आज तू पराजित कर दिया गया! तेरा ही अंत कर दिया गया! ॥१४२॥
तेरे स्वरूप को यथार्थ रूप से न जानते हुए ही, मूढ़जन नक्षत्रों को नमस्कार करते हैं, तपोवनों में अग्नि-पूजा करते हैं, और इस प्रकार शुद्धि-प्राप्ति की आशा करते हैं। ॥१४३॥
मैंने तो सर्वोत्तम पुरुष भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध की पूजा की है,
शास्ता के शासन को पालन कर मैं अब सब दुःखों से विमुक्त हो गई हूँ! ॥१४४॥

५२. सुजाता

साकेत नगर में धनी वैश्य-कुल में जन्म। धनवान् पति के साथ विवाह एवं सुखी गृहस्थ-जीवन। एक दिन उद्यान में प्रमोद-विहार करने के बाद लौटते हुए उसे भगवान बुद्ध के दर्शन प्राप्त हुए। उनसे उपदेश ग्रहण कर पति की आज्ञा लेकर वह भिक्षुणी हो गई। अपने इसी अनुभव का वर्णन करती हुई वह कहती है :

सुन्दर वस्त्र, सुन्दर गहने और सुगन्धित मालाएँ पहने हुए, चंदन से शरीर को लेप किए हुए, दासियों के सहित, बहुत मात्रा में स्वादिष्ट भोजन और पेय पदार्थों को लिए हुए, मैं एक दिन घर से निकल कर प्रमोद-वन में विहार करने निकली। ॥१४५-१४६॥
वहां क्रीड़ा और रमण कर मैं अपने घर की ओर आ रही

थी, रास्ते में साकेत के अंजन-वन के दर्शन करने के लिए मैं उसके अन्दर चली गई। ॥१४७॥
वहां मैंने लोक के प्रकाश-स्वरूप भगवान् बुद्ध के दर्शन किए; वंदना कर एक ओर नीचे बैठ गई।
अनुकंपा कर उन चक्षुष्मान् ने मुझे धर्मोपदेश किया।॥१४८॥
महर्षि का उपदेश किया हुआ सत्य मेरे मर्म को स्पर्श कर गया!
वहीं बैठे-बैठे मैंने अमृत पद (निर्वाण) को स्पर्श किया, विमल धर्म की मुझे पूर्णानुभूति हुई। ॥१४९॥
सद्धर्म का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, बाद में मैंने घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली।
मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया,
अहो! अमोघ है बुद्ध का शासन! ॥१५०॥

५४. अनुपमा

साकेत नगर के मध्य नामक धनी सेठ की लड़की। अद्वितीय रूप के कारण 'अनुपमा' नाम। वयः प्राप्त होने पर अनेक सेठ, राज-महामात्यों और राजाओं ने उसके पिता के पास दूत भेजे, 'अपनी पुत्री अनुपमा को हमें दो। हम तुम्हें इतना-इतना देंगे।' किन्तु अनुपमा को गार्हस्थ्य जीवन से पूर्ण उदासीनता थी, क्योंकि उसका चित्त एक ऊँचे लक्ष्य में आबद्ध था। उसने अपने पिता से कह दिया 'मुझे गृह-वास से कोई प्रयोजन नहीं है।' शास्ता के पास जाकर उस ने धर्म सुना और परम ज्ञान प्राप्त किया। अपने अनुभव का वर्णन करती हुई वह गाती है :

ऊंचे महाधनी, महा-ऐश्वर्यशाली कुल में मैं पैदा हुई;
मध्य को कन्या, रंग और रूप से सम्पन्न! ॥१५१॥
बड़े-बड़े राज-पुत्रों और सेठों के पुत्रों ने मेरे साथ विवाह के लिए प्रार्थनाएँ कीं, उत्कट लालसाएँ प्रकट कीं।

मेरे पिता के पास दूतों को कह कर भिजवाया;
'अनुपमा को हमें दो। हम तुम्हारी बेटी को तोल कर उसके
आठ गुने रत्न और अशर्फियाँ देंगे!' ॥१५२-५३॥

किन्तु मैं तो संसार के सब से बड़े पुरुष, अद्वितीय, भगवान
सम्यक् संबुद्ध के दर्शन करने चली गई!
उनके पैरों की वंदना कर एक ओर बैठ गई! ॥१५४॥

उन भगवान् गोतम ने अनुकंपा-पूर्वक मुझे धर्मोपदेश किया:
वहाँ बैठे हुए ही मैंने ब्रह्मचर्य-मार्ग के तृतीय फल (अनागा-
मि-फल) को स्पर्श किया! ॥१५५॥

फिर केशों को कटवाकर घर से बेघर हो मैंने प्रव्रज्या ली;
आज सातवीं रात है, जब कि मेरी वासना का मूलोच्छेदन
हो गया! ॥१५६॥

५५. महाप्रजापती गोतमी

देवदह नगर के महासुप्रबुद्ध की पुत्री। भगवान् बुद्ध की मां मायादेवी की सबसे छोटी बहिन। दोनों का पाणिग्रहण राजा शुद्धोदन के साथ हुआ। गोतम-वंशीय होने के कारण महाप्रजापती 'गोतमी' कहलाती थी। बुद्ध के जन्म के सातवें दिन महामाया का देहांत हो गया। इस अवस्था में महाप्रजापती गोतमी ने ही उनका पालन-पोषण किया। शुद्धोदन की मृत्यु के बाद महाप्रजापती गोतमी ने संसार त्याग करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु भगवान् बुद्ध ने अनुमति नहीं दी। बाद में आनन्द की प्रार्थना पर भगवान् ने महाप्रजापती और कुछ अन्य शाक्य स्त्रियों को प्रव्रजित होने की आज्ञा दे दी। बाद में भिक्षुणियों का एक अलग संघ ही बन गया। महाप्रजापती गोतमी बड़ी उच्चकोटि की साधिका थीं। भगवान् बुद्ध में उनकी कितनी उत्कट श्रद्धा थी और किस प्रकार वह उन्हें 'बहु-जनों' के कल्याण के लिए

अवतरित हुआ मानती थीं, इसका एक चित्र वह इस अत्यन्त सुन्दर गाथा में छोड़ गई हैं :

हे बुद्ध ! हे वीर ! हे सर्वोत्तम प्राणी ! तुझे नमस्कार !
जिसने मुझे और अन्य बहुत से प्राणियों को दुःख से उबारा।
॥१५७॥
सब दुःखों के कारण का मुझे पता चल गया, उनके मूल कारण वासना का भी मूलोच्छेदन कर दिया गया !
आज मैं दुःख-निरोध-गामी आर्य-अष्टांगिक मार्ग में विचरण करती हूं ॥१५८॥
माता, पुत्र, पिता, भाई, मातामही, मैं पूर्व जन्मों में अनेक वार बनती रही;
यथार्थ ज्ञान को न जानती हुई मैं लगातार संसार में घूमती रही ॥१५९॥
(फिर इस जन्म में) मैंने उन भगवान् बुद्ध के दर्शन किए,
(मुझे अनुभव हुआ) यह मेरा अन्तिम शरीर है !
मेरा आवागमन क्षीण हो गया, अब मुझे फिर जन्म लेना नहीं है ! ॥१६०॥
पुरुषार्थ में लीन, आत्म-संयमी, नित्य दृढ़ पराक्रम करने वाले, इन संघगत भिक्षुओं को अवलोकन करो– यह बुद्धों की वंदना है ॥१६१॥
अहो ! बहुतों के कल्याण के लिए ही महामाया ने गोतम को जना,
जिस ने व्याधि और मरण से त्रस्त प्राणियों के दुःख-पुंज को काट दिया ! ॥१६२॥

५६. गुप्ता

श्रावस्ती मे ब्राह्मण-कुल में जन्म। गृह-वास के प्रति जुगुप्सा होने के कारण माता-पिता से अनुमति लेकर प्रव्रज्या ले ली। किन्तु

फिर भी चित्त बाह्य वस्तुओं से अलग होकर एकाग्र नहीं हो सका। यह देख कर शास्ता ने उस पर अनुग्रह करते हुए धर्मोपदेश किया। उसी की प्रेरणा में अपने को उद्बोधन करती हुई गुप्ता गाती है :

गुप्ता ! संतानादि पार्थिव ऐश्वर्यों को छोड़ कर जिस प्रयोजन के लिए तूने प्रव्रज्या ग्रहण की,
उसीकी वृद्धि करने में तू लग, विद्रोही चित्त के वश में न हो ॥१६३॥

चित्त के द्वारा वञ्चित हुए मनुष्य मार के फंदे में पड़ते हैं,
अज्ञानी लोग अनेक बार आवागमन के चक्र में घूमते हैं।
॥१६४॥

किन्तु भिक्षुणी ! तेरा तो लक्ष्य ही दूसरा है !
तू भोग-तृष्णा, द्रोह, आत्मवाद-उपादान, कर्मकांड के प्रति आसक्ति, और संशय, इन पाँच बंधनों को, जो इस जीवन के बड़े विघ्न हैं, पार कर। फिर तुझे इस संसार में आना नहीं होगा ॥१६५-६६॥

तू राग, द्वेष, मान, अविद्या और मानसिक चंचलता को छोड़ कर सारे बंधनों को तोड़ डालेगी,
तभी तू अपने दुःखों का अन्त करेगी ॥१६७॥

आवागमन को दूर फेंक कर, पुनर्जन्म के कारण को जानकर, इसी जीवन में सत्य का साक्षात्कार करती हुई तू, तृष्णा को पार करने के बाद, परम शांत होकर विचरण करेगी ॥१६८॥

५७. विजया

राजगृह में प्रतिष्ठित कुल में जन्म। खेमा की प्रिय सहचरी। खेमा के संन्यास-ग्रहण कर लेने पर इसने भी संन्यास ले लिया और उसकी शिष्या बन गई। खेमा ने इसे धर्मोपदेश किया जिससे इसको चित्त

की शांति मिली। अपनी इसी कृतज्ञता का वर्णन करती हुई वह गाती है :

चंचल चित्त को वश में न कर सकने के कारण, अप्राप्त चित्त-शांति को प्राप्त करने के लिए, मैं चार-पाँच बार विहार से निकल कर बाहर गई ! ॥१६९॥

फिर उस भिक्षुणी (क्षेमा) के पास जाकर मैंने आदरपूर्वक उससे अपनी कठिनाई के विषय में प्रश्न पूछा,

उसने मुझे धातु, आयतन, चार आर्य सत्य, इंद्रिय, बल, सात बोध्यंग और परमार्थ प्राप्ति के साधन-स्वरूप आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश किया ॥१७०-७१॥

उसके धर्मोपदेश को सुन कर मैंने तदनुकूल आचरण किया,

रात के प्रथम याम में मुझे पूर्व-जन्मों का स्मरण हुआ ॥१७२॥
रात के मध्यम याम में मैं ने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया,
रात के अंतिम याम में मैंने अंधकार-पुंज को विदीर्ण कर दिया ॥१७३॥
सुख और शांति से मेरे देह और मन भर गए !
सातवें दिन जब मैंने आसन छोड़ा तो मेरा अज्ञानांधकार सर्वथा समुच्छिन्न हो गया था ! ॥१७४॥

सातवाँ वर्ग

५८. उत्तरा

श्रावस्ती में एक प्रतिष्ठित घर में जन्म। वैराग्य प्राप्त होने पर भिक्षुणी पटाचारा के पास जाकर प्रव्रज्या ले ली। पटाचारा के पास रह कर विपश्यना-प्रज्ञा की भावना की और अर्हत्व प्राप्त किया। पटाचारा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई अपनी कृतकृत्यता के पूर्ण उल्लास में उत्तरा गाती हैं :

"मूसलों से अन्न को कूट-कूट कर मनुष्य अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन करते और धन प्राप्त करते हैं ॥१७५॥

तो फिर तुम भी बुद्ध-शासन को करने में क्यों नहीं लग जातीं, जिसे करके पीछे पछताना नहीं होता:
अभी शीघ्र पैर धोकर एकांत (ध्यान) में बैठ जाओ ॥१७६॥
चित्त को एकाग्र कर, अच्छी प्रकार समाधि में स्थित करो,
फिर प्रत्यवेक्षण करो कि ये सभी संस्कार (कृत वस्तुएं) अनित्य हैं, दुःख हैं और अनात्म हैं।" ॥१७७॥

उस भिक्षुणी पटाचारा के इस धर्मोपदेश को सुन कर मैं उन के अनुशासन के अनुसार आचरण करने में लग गई!

पैर धोकर एकांत में ध्यान के लिए मैं बैठ गई ॥१७८॥

रात के प्रथम याम में मैंने अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण किया।
रात के मध्यम याम में मैंने दिव्य-चक्षुओं को विशोधित किया ॥१७९॥

रात के अंतिम याम में मैने अंधकार-पुंज को नष्ट कर दिया !
हे देवि ! तेरे अनुशासन को पूरा कर जब मैं आसन से उठी
तो मैं तीनों विद्याओं की पूर्ण ज्ञाता थी ! ॥१८०॥

संग्राम मे विजयी देवेन्द्र शक्र की जसे तीसों देवता वंदना
करते हैं, वैसे ही मैं भी तुम्हारी सेवा करती हुई विचरूँगी !
देवि ! (तेरे अनुशासन के बल से) मैं आज तीनों विद्याओं
की ज्ञाता हूँ, पूर्ण निष्पाप, चित्त-मल-विमुक्त हूँ ! ॥१८१।

५६. चाला

मगध में नालक नामक ग्राम में ब्राह्मण-कुल में जन्म। माता का नाम रूपसारि ब्राह्मणी। नामकरण-संस्कार के दिन उसका नाम चाला रक्खा गया। उसकी कनिष्ठ भगिनी का उपचाला और उसकी भी कनिष्ठ भगिनी का शिशूपचाला नाम रक्खा गया। ये तीनों धर्मसेनापति सारिपुत्र की छोटी बहनें थीं। सारिपुत्र के प्रव्रजित हो जाने पर इन तीनों ने सोचा "निश्चय ही वह धर्म असाधारण होगा, वह प्रव्रज्या भी असाधारण होगी, जिसमें हमारे भाई सारिपुत्र ने श्रद्धा-पूर्वक दीक्षा ग्रहण की है।" ऐसा सोच कर उन तीनों ने संसार त्याग कर दिया। एक दिन भिक्षुणी चाला भोजनोपरांत अंधवन में ध्यान करने चली गई। वहां मार ने उसे ब्रह्मचर्य के जीवन से पथभ्रष्ट करने के लिए उस के साथ वाद रोपा। चाला ने बुद्ध और धर्म के गुणों का वर्णन करते हुए अपनी कृतकृत्यता की अवस्था को दिखाया। मार दुःखी और दुर्मना होकर वहां से चला गया। मार के साथ अपने इसी संवाद को गाथाबद्ध करती हुई वह गाती है :

मुझ भिक्षुणी चाला ने स्मृति को सामने रख कर, श्रद्धादि
जीवनी शक्तियों की पूर्णता प्राप्त की,

फिर मैंने उस शांत पद का साक्षात्कार किया, जहाँ सभी
संस्कारों की पूर्ण शांति है ॥१८२॥

मार

चाला ! किस लिए तू ने सिर को मुँड़ा कर भिक्षुणी का वेश धारण कर लिया है ? बता भिक्षुणी ! क्यों तू यह मोह का आचरण कर रही है ? ॥१८३॥

चाला

मिथ्या मार्ग का अवलंबन करने वाले, मिथ्या दृष्टि-पूर्ण साधुओं से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। वे इस मार्ग से बहिर्भूत हैं।

धर्म और धर्म के तत्व को वे कुछ नहीं जानते ॥१८४॥

किंतु शाक्य-कुल में उत्पन्न, अद्वितीय, महापुरुष बुद्ध, लोक में अवतरित हुए हैं;

उन्होंने मुझे धर्म का उपदेश दिया है, जिसे सुन कर मेरे भ्रम और मिथ्या-दृष्टि का उच्छेदन हुआ है ॥१८५॥

दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश उन भगवान् ने मुझे दिया ॥१८६॥

उन भगवान् के उपदेश को सुन कर मैं उनके शासन के पालन करने में लग गई,

मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, बुद्ध के शासन को पूरा कर लिया ॥१८७॥

सम्पूर्ण वासना का निरोध हो गया, अन्धकार-पुंज विदीर्ण हो गया।

पापी मार ! प्राणियों का अन्त करने वाले ! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। तू मार डाला गया ! ॥१८८॥

६०. उपचाला

जीवन-वृत्त ऊपर दिया जा चुका है। चाला के समान इसने भी अर्हत्त्व प्राप्त कर मार को पराजय दी। मार के साथ अपने सम्वाद को ग्रथित करती हुई उपचाला विजयोल्लास में गाती है :

मैं स्मृतिमती, चक्षुष्मती, भिक्षुणी हूँ,
श्रद्धादि इन्द्रियों की पूर्णता प्राप्त कर,
मैंने वीर पुरुषों के द्वारा सेवित,
शांत पद को प्राप्त किया है ॥१८९॥

मार

उपचाले! जन्म से विराग क्यों?
जन्म प्राप्त करके ही तो भोगों का अनुभव किया जाता है।
तू भोगों का आनन्द ले। अन्यथा पीछे पछतायेगी ॥१९०॥

उपचाला

जन्म का परिणाम मृत्यु है। जन्म होने से ही हाथ और पैरों का काटा जाना होता है। बध, बंधन और नाना क्लेश होते हैं; जन्म होने से ही प्राणी दुःख को पाता है ॥१९१॥

जन्म से अपराजित तो एकमात्र पुरुष सम्यक् सम्बुद्ध है, जिसने शाक्य-कुल में जन्म लिया है,

उसने मुझे जन्म का अतिक्रमण करने वाले धर्म का उपदेश दिया है ॥१९२॥

दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःखों का शमन, दुःखों के शमन का साधन आर्य अष्टांगिक मार्ग, यह उन भगवान् ने मुझे उपदेश किया है ॥१९३॥

उन भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर मैं उसके अनुकूल आचरण में लग गई;

मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, बुद्ध-शासन को पूरा कर लिया ॥१६४॥

सम्पूर्ण वासना का विनाश हो गया, अन्धकार-पुंज विलीन हो गया।

पापी मार ! सब प्राणियों का अन्त करने वाले ! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया। तू मार डाला गया ॥१६५॥

आठवाँ वर्ग

६१. शिशूपचाला

जीवनी ऊपर चाला के जीवन-वृत्त के प्रसंग में दे दी गई है। मार के साथ वह भी अपने सम्वाद को ग्रथित करती हुई पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उल्लास में गाती है :

मैं सदाचार-सम्पन्न, संयतेंद्रिय भिक्षुणी हूँ।
ओजयुक्त, जीवन-संचारिणी सुधा के समान मैंने परम शांत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार किया है ॥१६६॥

मार

त्रायस्त्रिंश लोक के देवगण, यम-लोक के देवगण, तुषित लोक के देवगण एवं निर्माणरति देवगण,
इन सब देवयोनियों के विषयों की तू चिंता कर;
पहले तू यहां हो आई है, तू इन्हीं के भोगों में अपने चित्त को लगा ॥१६७॥

मार के ये वचन सुनकर भिक्षुणी ने कहा "मार ! ठहर, सुन, यह काम-लोक की कथा जो तू कहता है, वह तो इस लोक के समान ही तृष्णा, विद्वेष और अविद्या की अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। वहां ज्ञानी का चित्त नहीं रम सकता।" फिर मार को फटकारती हुई शिशूपचाला अपनी अनासक्ति का वर्णन करती है :

त्रायस्त्रिंश लोक के देवगण, यमलोक के देवगण,
तुषित लोक के देवगण एवं निर्माणरति देवगण, ॥१६८॥

ये सब उस आत्मवाद-उपादान के दमन करने में असमर्थ हैं, जो जन्म-मृत्यु के चक्र को गति प्रदान करता है।

ये तो केवल जन्म-मृत्यु को ही लक्ष्य बना कर युग-युग पर्यन्त जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म को प्राप्त करते रहते हैं ॥१९९॥

यह सब लोक आग से जल रहा है, लौ दे दे कर जल रहा है,

आग से यह प्रज्वलित हो रहा है, प्रकम्पित ही हो रहा है ॥२००॥

न कँपने वाला तो वह अद्वितीय, केवल ज्ञानी जनों द्वारा सेवित धर्म ही है,

जिसका भगवान् बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया है।

मैंने उन भगवान् से इस उपदेश को सुन कर उनमें अपना मन लगाया ॥२०१॥

मैंने शास्ता के शासन का आचरण किया;

फिर तीनों विद्याएं मैंने साक्षात्कार कर लीं, बुद्ध के शासन को पूरा कर लिया ॥२०२॥

मेरी सम्पूर्ण वासना का मूलोच्छेद हो गया, अन्धकार-पुंज का विनाश हो गया।

पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। पापी! तू मार डाला गया ॥२०३॥

नवाँ वर्ग

६२. वड्ढमाता

भरुकच्छ (भडौंच) नगर में एक प्रतिष्ठित घर में जन्म। पुत्र का नाम वड्ढ। अतः उसके नाम पर यह वड्ढ-माता कहलाने लगी। एक दिन एक भिक्षु के उपदेश को सुन कर प्रव्रजित हो गई और पुत्र को आत्मीय जनों को सौंप गई। वयः प्राप्त होने पर पुत्र भी प्रव्रजित हो गया। एक दिन माता को देखने के लिए वड्ढ अकेला भिक्षुणी-संघ में गया। उसको देखकर माता ने कहा, "वड्ढ! तू इस स्थान में अकेला कैसे आया?" यह कहकर उसने अपने पुत्र को उपदेश दिया :

वत्स वड्ढ! इस लोक के तृष्णा-रूपी अरण्य में तू कभी प्रवेश मत करना;

प्रिय पुत्र! बार-बार तू दुःख का भागी मत बनना ॥२०४॥

वत्स वड्ढ! जिन मुनियों ने अपने समस्त संशयों को छिन्न कर दिया, तृष्णा का दमन कर उसकी वश्यता से जिन्होंने मुक्ति पाली, जो शांत और निष्पाप हो गए, वही प्रकृत सुख के अधिकारी हैं ॥२०५॥

वत्स वड्ढ! तू भी दुःख का अन्त करने के लिए और सम्यक् दर्शन की प्राप्ति के लिए, ऋषियों के द्वारा अनुभूत इस मार्ग का अनुशीलन और विकास कर! ॥२०६॥

यह सुन कर वड्ढ ने सोचा, 'निश्चय ही मेरी माता अर्हत्व-प्राप्त है' और कहा :

जननी ! जो तू कहती है, अपने अंतर की सत्य बात ही कहती है;
माता ! मुझे विश्वास है कि तृष्णा-रूपी अरण्य तेरे अन्दर नष्ट हो गया ॥२०७॥

माता कहती है:

वत्स वड्ढ ! हीन, मध्यम और उत्तम जितने भी संस्कार हैं, उनकी अणुमात्र भी तृष्णा मेरे अन्दर नहीं रही ॥२०८॥

वत्स ! मेरे सब चित्त-मल नष्ट हो गए, क्योंकि मैंने अध्यवसाय-पूर्वक ध्यान किया है।
तीनों विद्याओं को मैंने प्राप्त किया है, बुद्ध-शासन को मैंने पूरा किया है ॥२०९॥

माता के उत्साहकारी वचनों को सुनकर भिक्षु अपने विहार में चला गया और वहाँ जाकर ध्यान में बैठ गया। अंतर्दृष्टि की वृद्धि कर उसने अर्हत्व प्राप्त किया। बाद में माता के पास आकर उल्लास-पूर्वक उद्घोषित किया:

अनुकंपिका माता के अंकुशाघात और उसके परमार्थदायक उपदेश ने मेरा उत्थान साधन किया ॥२१०॥

माता के धर्मोपदेश को सुनकर और उसे हृदय में रखकर, परम शांति रूपी कल्याणकारी मार्ग को प्राप्त करने के लिए मैंने पदार्थों में वैराग्य प्राप्त किया ॥२११॥

फिर आत्म-संयमी होकर रात-दिन अतंद्रित रह कर मैं परम तीव्र निर्वाण-साधना में लग गया।
माता के उपदेश से प्रेरित होकर मैं आज परम शांति का अधिकारी हो गया, मैंने उत्तम शांति (निर्वाण) में प्रवेश किया ॥२१२॥

दसवाँ वर्ग

६२. कृशा गोतमी

श्रावस्ती के एक निर्धन घर में जन्म। 'गोतमी' नाम, किंतु अत्यन्त कृश होने के कारण 'कृशा' कहलाने लगी। पहले तो पति के घर में आदर ही नहीं हुआ, क्योंकि गरीब की पुत्री थी। फिर जब एक पुत्र हुआ तो उसका कुछ सम्मान होने लगा। किन्तु पुत्र भी बाल्यावस्था में ही मर गया। गोतमी पगली हो गई। शोक के उन्माद में मृतक बच्चे को गोद में रख कर घर-घर जाकर कहती, "मेरे बच्चे को औषध दो!" लोग कहते, "औषध किस के लिए?" एक दिन एक आदमी को उसकी वेदना देख कर दया आ गई और यह सोचकर कि शायद भगवान् तथागत इसके लिए दवा बता सकें, उसने उसे महापुरुष बुद्ध के पास जाने के लिए कहा। भगवान् के पास जाकर गोतमी ने कहा, "भगवान् मेरे पुत्र को औषध दें।" भगवान् ने उससे कहा, "नगर में जाकर जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो, उस घर से पहले सरसों ले आ।" "जो आज्ञा" कह कर गोतमी सरसों लेने चली गई। घर से घर पूछती चली गई किंतु ऐसा घर कोई नहीं मिला जहाँ कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो। लौट कर शास्ता के पास आई। "कह गोतमी! सरसों कहीं पाई?" "भंते! अब सरसों पाने का प्रयोजन नहीं रहा। भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें। मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेती हूं।" भगवान् ने उसे उपदेश दिया और भिक्षुणी-संघ में प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दी। थोड़े ही दिनों में ही कृशा गोतमी ने अर्हत्त्व प्राप्त किया। रूक्ष चीवरधारिणी भिक्षुणियों मे वह सबसे

प्रधान मानी जाती थी। भाव के उल्लास में अपने जीवनानुभव का वर्णन करती हुई गाती है :

कल्याणकारी-पुरुष के साथ मित्रता की मुनि ने प्रशंसा की है, सदाचारी पुरुष के साथ मित्रता करने से मूर्ख भी पंडित हो जाते हैं ॥२१३॥

सत्पुरुषों का अनुसरण करो, इससे ज्ञान की वृद्धि होगी,
सत्पुरुषों की सेवा करने से सब दुःखों से मुक्ति मिलती है ! ॥२१४॥

सत्संग से मनुष्य को दुःख का ज्ञान होता है, दुःख के समुदय का,
दुःख के निरोध का और दुःख की निवृत्ति की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग का भी ॥२१५॥

"स्त्री-जन्म दुःख है", ऐसा मनुष्यों के चित्त को संयमी बनाने वाले उन सारथी-स्वरूप भगवान बुद्ध ने कहा है !
पत्नी-सहवास दुःख है, संतान-प्रसव दुःख है ! ॥२१६॥

कोई अपने कंठ का छेदन करे, कोई सुंदरी तरुणी विष का पान करे,
प्राणनाशी भ्रूण माता के पेट में आकर दोनों का ही विनाश करता है ॥२१७॥

"प्रसव के लिए मैं अपने घर की तरफ चली आ रही थी कि रास्ते में मैंने अपने मृत पति को देखा:
प्रसव के समय मैं अपने घर जाने में भी असमर्थ हो गई ! ॥२१८॥

हतभाग्य नारी ! तेरे दो पुत्र काल कवलित हो गए, मार्ग में तूने मृत पति को देखा;

अपने माता, पिता और भाई को तूने एक ही चिता में जलते देखा !"[1] ॥२१६॥

भाग्यहीन नारी ! तूने असंख्य जन्मों में इस प्रकार का अपरमित दुःख अनुभव किया है, तूने सहस्रों जन्मों में अपार आँसुओं को बहाया है ॥२२०॥

श्मशान में अनेक बार पुत्रों के मांसों को वन्य पशुओं के द्वारा खाए जाते हुए तू ने देखा है !
हाय ! तेरा सब कुछ लुट गया ! सब ने तुझे छोड़ दिया, पति भी तुझे छोड़ कर चला गया !
अहो ! आश्चर्य ! इस अवस्था में भी मैं इस समय मृत्यु से परे हूँ, मैंने अमृत (निर्वाण) को पा लिया है ॥२२१॥

अमरता-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग का मैंने सेवन किया है,
निर्वाण का मैंने साक्षात्कार किया है,
धर्म के दर्पण में मैंने देखा है ॥२२२॥

मैं आज वेदना से मुक्त हूं, सभी बोझों को मैंने फेंक दिया है।
मेरे सब कर्तव्य पूरे हो गए,
सभी बंधनों से मेरा चित्त विमुक्त हो गया।
मैं कृशा गोतमी यह कहती हूं ॥२२३॥

---

१. यह पटाचारा की जीवन-कथा का अंश है, जिसे कृशा गोतमी यहाँ स्त्री-जन्म का दुःख दिखाने के लिए उद्धृत करती है।

ग्यारहवाँ वर्ग

६४. उत्पलवर्णा

श्रावस्ती के कोषाध्यक्ष की कन्या। नील कमल के समान वर्ण की होने के कारण 'उत्पलवर्णा' नाम। वय प्राप्त होने पर अनेक राज-कुमारों और श्रेष्ठि-पुत्रों ने उसके साथ विवाह के लिए प्रार्थनाएँ कीं। उसके पिता ने सब को सन्तुष्ट करने में अपने को असमर्थ पाकर बेटी से पूछा कि वह प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत है कि नहीं। उत्पल-वर्णा ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहा, "मैं अभी प्रस्तुत हूं।" पिता ने सम्मान के साथ कन्या को भिक्षुणी-संघ में ले जाकर अभिषिक्त कराया। साधना करते हुए यथा समय उत्पलवर्णा ने अर्हत्त्व प्राप्त किया। योग की सिद्धि प्राप्त करने वाली भिक्षुणियों में वह अग्रणी मानी जाने लगी। सिद्धि के परमानंद की अवस्था में एक दिन विषय-भोगों के दुष्परिणामों का प्रत्यवेक्षण करती हुई वह एक दुःखानुतप्त माता की गाथा को कहती है, जो अपनी कन्या के साथ एक ही पुरुष में आसक्त हो गई थी और वह और उसकी कन्या दोनों सपत्नी बन कर दूषित जीवन बिताने लगी थीं। बाद में अपने अपवित्र जीवन से अनुतप्त होकर उन्होंने राजगृह में जाकर प्रव्रज्या ले ली। जिस पुरुष में वे आसक्त थीं वह भी भिक्षु हो गया और गंगा के किनारे पर रहने लगा तथा 'गंगा तीर-वासी स्थविर' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पहले की तीन गाथाएँ पतित माता के द्वारा कही गई हैं, बाद की दो गाथाओं में वह स्वयं साधना से उपलब्ध आनन्द का वर्णन करती है। अंतिम गाथाओं में मार के साथ उसके संवाद का वर्णन है:

(क)

माता और कन्या, हम दोनों सपत्नी का दूषित जीवन बिताती थीं; बाद में अद्भुत, रोमांचकारी उदासीनता मुझे प्राप्त हुई ॥२२४॥

हाय ! इस इन्द्रिय-लालसा को धिक्कार ! इस अपवित्र दुर्गंध-मय, काँटों से भरी हुई विषय-वासना को धिक्कार !
इस विषय-वासना के कारण हम माता और पुत्री दोनों सौतें हो गईं ! ॥२२५॥

विषय-भोगों के दोषों और दुष्परिणामों को देख कर हम ने सोचा—निष्कामता में ही दृढ़ मंगल है।

अतः घर से बेघर हो राजगृह में जाकर प्रव्रजित हो गईं ॥२२६॥

(ख)

फिर योग-सिद्धि प्राप्त कर उसके उल्लास में वह गाती है:
मुझे अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण हुआ, चक्षु दिव्य और विशोधित हुए,
पर-चित्त-ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, मेरी श्रोत्र-इन्द्रिय विशोधित हुई ॥२२७॥

योग-सिद्धि भी मैंने साक्षात्कार की, चित्त-मलों का क्षय भी मैंने प्राप्त किया,

छः श्रेष्ठ ज्ञान मैंने साक्षात्कार किए, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा ही कर लिया ॥२२८॥

योग-सिद्धि के बल से निर्मित, चार घोड़ों के रथ में बैठ कर मैं आई,
जगत्पति भगवान् बुद्ध की मैंने पाद-चंदना की ॥२२९॥

शाल-कुंज में बैठ कर वह एक बार ध्यान कर रही थी। उस समय मार वहां आकर उसे मार्ग-भ्रष्ट करने की चेष्टा करने लगा। नीचे की गाथाओं में दोनों का संवाद है:

मार

पुष्पित तरु-कुञ्ज में आकर तू अकेली वृक्ष के नीचे बैठी हुई है,
तू अरक्षित है मूढ़! क्या तुझे धूर्तों से भय नहीं? ॥२३०॥

भिक्षुणी

तेरे सदृश शत-सहस्र धूर्त भी यदि आ जायें तो मेरे एक केशाग्र का स्पर्श नहीं कर सकते, तेरी एक की तो गिनती ही क्या है? ॥२३१॥

मार

मैं अभी अदृश्य होकर तेरी देह में प्रवेश किए जाता हूं!
देख, मैं अभी तेरी भौंहों में अदृश्य होकर छिपा जाता हूं।
तू मुझे देख भी न सकेगी ॥२३२॥

भिक्षुणी

चित्त मेरा वशीभूत है, योग-सिद्धियों में मैं प्रतिष्ठित हूं।
छः श्रेष्ठ ज्ञानों की पारदर्शिनी हूं, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा किया है॥ २३३॥

काम-तृष्णा और स्कंध-समूह भाले की तरह विद्ध करते हैं,
जिसे तू भोगों का आनन्द कहता है, वही मेरे लिए दुःख है,
घृणा का कारण है ॥२३४॥

वासना का सब जगह से उच्छेदन कर मैंने अज्ञानांधकार को विदीर्ण कर दिया है।
पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले। आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। तू मार डाला गया! ॥२३५॥

बारहवाँ वर्ग

६५. पूर्णिका (पूर्णा)

जन्मस्थान श्रावस्ती। सेठ अनाथपिंडिक के घर की दासी की पुत्री। भगवान् बुद्ध के उपदेश से प्रथम फल (स्रोत आपन्न फल) में प्रतिष्ठित हो गई। एक दिन पूर्णिका ने जल से शुद्धि मानने वाले (उदकशुद्धिक) एक ब्राह्मण को वास्तविक विशुद्धि के मार्ग (बुद्ध-धर्म) में उपनीत किया। इस से अनाथपिंडिक को इस दासी-पुत्री में बड़ी श्रद्धा हो गई। उसने इसे दासत्व से मुक्त कर दिया। बाद मे अनाथपिंडिक की अनुमति से वह भिक्षुणी-संघ में प्रविष्ट हुई। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पूर्णिका उपर्युक्त ब्राह्मण के साथ हुए अपने संलाप का प्रत्यवेक्षण करती हुई, उसे गाथा-बद्ध कर गाती है :

मैं पनिहारिन थी।
सदा पानी भरना ही मेरा काम था;
स्वामिनियों के दंड के भय से,
उनके क्रोध भरे कुवाच्यों से पीड़ित होकर,
मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता ॥२३६॥

"ब्राह्मण ! तू किस के भय से भयभीत होकर, इस कड़ी सर्दी में गहरी नदी में उतरता है और निरंतर सर्दी की कठिन पीड़ा को सहता है ?" ॥२३७॥

"पूर्णिके ! तू जानती हुई भी मुझसे कारण पूछती है। क्या तू नहीं जानती कि मैं पाप-कर्मों के फल का अवरोध करने के लिए यह पुण्य कर्म करता हूँ ? ॥२३८॥

जो भी बुरे कर्म मनुष्य युवावस्था में या वृद्धावस्था में करता है,
स्नान-शुद्धि से वह इन सबसे मुक्त हो जाता है।" ॥२३९॥

"स्नान-शुद्धि से पाप-मुक्ति होती है,
यह तुमसे किसने कहा ?
यह तो अज्ञानी मूढ़ का अज्ञानी मूढ़ के प्रति उपदेश है ॥२४०॥

यदि जल से ही शुद्धि होती,
तब तो मेढक, कछुए, सर्प, मगर आदि जलचरों का स्वर्ग-गमन निश्चित है ! ॥२४१॥

यदि जल-स्नान से पाप-मुक्ति होती है,
तो फिर बकरी, सुअर और मृगों का मांस बेचने वाले, मछुए, चोर और वधिक,
सभी पाप कर्म करने के बाद जल में स्नान कर,
क्या पाप-मुक्त नहीं हो जायँगे ? ॥२४२॥

फिर यदि इस नदी में नहाने से पूर्व के पाप-कर्म धुल जाते हैं,
तो क्या फिर उनके साथ ही तेरे पुण्य-कर्म भी न धुल जायँगे ?
ब्राह्मण ! फिर तेरे पास क्या रहेगा ? ॥२४३॥

ब्राह्मण ! यदि ब्रह्म (ब्रह्मा) के भय से तू इस कड़ी सर्दी के दुःख को सहता है,
तो भी इस भय को तू छोड़;
शीत से अपने देह की रक्षा कर,
इसे पीड़ित मत कर।" ॥२४४॥

"मैं कुमार्ग में पतित था,
तूने मुझे आर्य-मार्ग में लगाया:

देवी ! इन स्नान-वस्त्रों को मैं तुझे दान करता हूँ।" ॥२४५॥

"ये तेरे वस्त्र तेरे ही पास रहें, मुझे इनकी इच्छा नहीं है,
हाँ, यदि दुःख से तुझे भय है, यदि दुःख तुझे प्रिय नहीं लगता,
तो प्रकाश में या छिपे हुए पाप-कर्म न करना ॥२४६-४७॥

वर्तमान या भविष्य में यदि तू पाप-कर्म (का संकल्प) करेगा,
तो दुःख से तेरी मुक्ति सम्भव नहीं,
चाहे कहीं भागना, पर मुक्ति न होगी ॥२४८॥

यदि दुःख से तुझे भय है,
यदि दुःख तुझे प्रिय नहीं लगता,
तो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जा,
सदाचरण का पालन कर,
तेरा मंगल होगा।" ॥२४९॥

"मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लूँगा,
सदाचरण का पालन करूँगा,
वह मेरे लिए मंगलकारी हो ॥२५०॥

पहले मैं नाममात्र का ब्राह्मण था,
इस समय मैं सच्चा ब्राह्मण हूँ।
तीनों विद्याओं का ज्ञाता और वेदज्ञ ब्राह्मण हूँ,
आज मैं सच्चे अर्थों में श्रोत्रिय हूँ, स्नातक हूँ।" ॥२५१॥

तेरहवाँ वर्ग

६६. अंबपाली

वैशाली के राजोपवन में आम के पेड़ के नीचे जन्म। इसीलिए अंबपाली नाम। वयः प्राप्त होने पर अतिशय सुन्दरी। वैशालिक राज-कुमारों ने इससे विवाह करने की परस्पर स्पर्धा की। कलह को शांत करने के लिए पंचायत का निर्णय कि वह सबकी सामान्य पत्नी बन कर रहे। भगवान् बुद्ध अपने जीवन के अंतिम दिनों में जब वैशाली की ओर गए तो अंबपाली के उपवन में ठहरे। अंबपाली ने जाकर भगवान् के चरणों की पूजा की और भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजन के बाद उपदेश ग्रहण किया और अपना उपवन बुद्ध-प्रमुख संघ को दान कर दिया। साधना करते हुए अंबपाली ने अपने प्रव्रजित पुत्र विमल कौंडन्य के उपदेश से प्रव्रज्या ग्रहण की। वृद्धावस्था में अपने शरीर के परिवर्तनों को देख कर अंबपाली ने बुद्ध-वचनों की सत्यता प्रतिफलित होते हुए देखी और उसे संसार की सभी वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हुआ। अपने निरंतर जर्जरित होते हुए शरीर को देखकर वह कहती है :

काले, भौंरे के रंग के समान, जिनके अग्र भाग घुंघराले हैं, ऐसे किसी समय मेरे बाल थे.
वही आज जरावस्था में जीर्ण सन के समान हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५२॥
पुष्पाभरणों से गुथा हुआ मेरा केशपाश कभी हजारा चमेली के पुष्प की-सी गन्ध वहन करता था.

उसी में से आज जरा के कारण खरहे के रोओं की सी दुर्गंध आती है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५३॥

कंघी और चिमटियों से सजा हुआ मेरा सुविन्यस्त केशपाश कभी अच्छे रोपे हुए सघन उपवन के सदृश शोभा पाता था। वही आज जराग्रस्त होकर जहाँ-तहाँ से बाल टूटने के कारण विरल हो गया है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५४॥

सोने (के गहनों) से सुसज्जित, महकती हुई चोटियों से गुथा हुआ, कभी मेरा सिर रहा करता था।
वही आज जरावस्था में भग्न और विनमित है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५५॥

चित्रकार के हाथ से कुशलता-पूर्वक अंकित की हुई जैसे मेरी दो भौंहें थीं।
वही आज जरा के कारण झुर्रियाँ पड़ कर नीचे लटकी हुई हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५६॥

गहरे नीले रंग की दो उज्ज्वल, सुन्दर, मणियों के समान मेरे दो विस्तृत नेत्र थे।
वही आज बुढ़ापे से अभिहत हुए भद्दे और आभाहीन हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नही होते ॥२५७॥

उठते हुए यौवन की सुन्दर शिखर के समान वह कोमल, सुदीर्घ मेरी नासिका थी।
वही आज जरावस्था में दबकर पिचकी हुई है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५८॥

पूरी कारीगरी के साथ बनाए हुए, सुगठित कंकण के समान कभी मेरे दोनों कानों के सिरे थे।
वही आज जरावस्था में झुर्रियाँ पड़कर नीचे लटके हुए हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२५६॥

कदली की कली के समान रंग वाले किसी समय मेरे सुन्दर दाँत थे।
वही आज जरावस्था में खंडित होकर जौ के समान पीले रंग वाले हो गये हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६०॥

वनचारिणी कोकिला की मधुर कूक के समान किसी समय मेरी प्यारी मीठी बोली थी,
वही आज जरावस्था में स्खलित और भर्राई हुई है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६१॥

अच्छी प्रकार खराद पर रक्खे हुए, चिकने शंख के समान, किसी समय मेरी सुन्दर ग्रीवा थी।
वही आज जरावस्था में भग्न और विनमित है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६२॥
सुन्दर, सुगोल गदा के समान किसी समय मेरी दोनों सुन्दर बाहें थीं।
वही आज जरावस्था में पाडर वृक्ष की शाखाओं के समान दुर्बल हैं- सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६३॥

सुन्दर मुंदरी और स्वर्णालङ्कारों से विभूषित पहले मेरे हाथ रहते थे।
वही आज जरावस्था में निर्बल और गाँठ-गठीले हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६४॥

स्थूल, सुगोल, उन्नत, कभी मेरे दोनों स्तन सुशोभित होते थे। वही आज जरावस्था में पानी से रीती लटकी हुई चमड़े की थैली के सदृश हो गये हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥·६५॥

सुन्दर, विशुद्ध, स्वर्ण-फलक के समान कभी मेरा शरीर चमकता था।
वही आज जरावस्था में सूक्ष्म झुर्रियों से भरा हुआ है—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६६॥

हाथी की सूँड़ के समान एक समय मेरे सुन्दर उरु-प्रदेश थे। वही आज पोले बाँस की नली के समान हो गये हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६७॥

सुन्दर नूपुर और स्वर्णालङ्कारों से सजी हुई मेरी जंघाएँ किसी समय रहती थीं।

वही आज जरा के कारण तिल के सूखे डंठल के समान हो गई हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६८॥

मेरे दोनों सुकोमल पैर कभी रुई के फाहे के समान हलके थे। वही आज जरावस्था मे सूखकर झुर्रियों से भरे हुए हैं—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२६९॥

एक समय यह शरीर ऐसा था। इस समय वह जर्जर और अनेक दुःखों का घर है। जीर्ण घर जैसे बिना लिपाई-पुताई के गिर जाता है, उसी प्रकार यह जरा का घर (शरीर) भी बिना थोड़ी-सी रखवाली किए शीघ्र ही गिर जायगा—सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ॥२७०॥

६७. रोहिणी

वैशाली के एक समृद्धिशाली ब्राह्मण-कुल में जन्म। भगवान बुद्ध के उपदेश को सुनकर धर्म-श्रद्धा उत्पन्न हुई। बौद्ध संघ में अत्यन्त अनुरक्त थी। एक दिन अपने पिता के साथ हुए वार्तालाप को गाथाबद्ध करती हुई रोहिणी बतलाती है कि उसे बौद्ध भिक्षु क्यों प्रिय हैं। साथ ही वह अपने पिता को बुद्ध-मत में दीक्षित भी करती है। रोहिणी द्वारा निबद्ध दोनों के संलाप को देखिये :

"रोहिणी! तेरे मुख से सदा यही रहता है 'अहो! ये श्रमण!' तू मुझे सोते से भी जगा कर कहती है, 'पिताजी! इन श्रमणों को देखो'। जब देखो तू श्रमणों के ही गीत गाया करती है। क्या तू भी श्रमणी बनेगी? ॥२७१॥

श्रमणों को तू बहुत अन्नपानादि दान करती है। रोहिणी! मैं तुझसे पूछता हूं—श्रमण-जन तुझे इतने प्रिय क्यों हैं? ॥२७२॥

देख, ये भिक्षु श्रम नहीं करते, आलसी हैं, दूसरों का अन्न खाने वाले हैं,

लोभी और स्वादिष्ट भोजन के लालची हैं, फिर भी ये श्रमण तुझे क्यों प्रिय हैं?" ॥ २७३ ॥

'पिताजी! आपने बहुत बार मुझसे श्रमणों के विषय में पूछा है। आज मैं आपके सामने उनके ज्ञान, सदाचार और उनकी कर्मतत्परता का वर्णन करूँगी ॥२७४॥

वे श्रमशील हैं, अप्रमादी हैं, श्रेष्ठ कर्म को करने वाले हैं, उनमें तृष्णा नहीं है, द्वेष नहीं है, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२७५॥

तीनों प्रकार के (कायिक, वाचिक, मानसिक) पापों की जड़ काट कर उनकी देह विशुद्ध है, उनका चित्त विशुद्ध है।
सब पाप उनके प्रहीण हो गए हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२७६॥

कायिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, वाचिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, मानसिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२७७॥

शंख के मोता के समान उनका बाहर भी विमल है, भीतर भी विमल है,
सब सद्गुणों से वे पूर्ण हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२७८॥

वे बहुश्रुत हैं, धर्मात्मा हैं, आर्य हैं, धर्माभ्यास ही उनकी उप-जीविका है,
धर्म और धर्मार्थ का उपदेश करते हुए वे जीवन-यापन करते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२७९॥

वे बहुश्रुत हैं, धर्मात्मा हैं, आर्य हैं, धर्माभ्यास ही उनकी उप-जीविका है,
वे एकाग्रचित्त और निष्ठावान् हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२८०॥

वे दूर-दूरांतर तक जाने वाले, निष्ठावान् और धर्म का निरन्तर अभ्यास करने वाले हैं।
वे विनयी हैं और दुःख की निवृत्ति का मार्ग उन्हें ज्ञात है, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२८१॥

गाँव से जब वे चलते हैं, तो उनकी दृष्टि इधर-उधर दौड़ती नहीं।

सम्पूर्ण उदासीनता और अनासक्ति के साथ वे गमन करते हैं,
इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं। ॥२८२॥

पार्थिव संपत्ति को इकट्ठा करने के लिए वे अपने पास घर
नहीं रखते. यहाँ तक कि घड़े आदि पात्र तक भी नहीं रखते।
उनके सारे संकल्प पूर्ण हो चुके हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे
प्रिय हैं ॥२८३॥

अशर्फी, सोना, रुपया वे कुछ ग्रहण नहीं करते।
भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ वे केवल वर्तमान में ही
रमते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं ॥२८४॥

नाना कुलों, नाना जनपदों से उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की है,
फिर भी एक-दूसरे के साथ वे प्रेम से बरतते हैं, इसीलिए
श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं" ॥२८५॥

"रोहिणी ! मेरे मंगल के लिए ही तूने इस घर में जन्म
लिया। बुद्ध, धर्म और संघ में तेरी श्रद्धा अत्यन्त गौरववती
है ॥२८६॥

इसीलिए ये पुण्य के सर्वोत्तम क्षेत्र (भिक्षु-गण) तुझे
प्रिय हैं।
आज से मैं भी उन श्रमणों की सेवा में रत होकर, विपुल
दक्षिणा वाली यज्ञ का अनुष्ठान करूंगा" ॥२८७॥

'पिताजी ! यदि दुःख से आपको भय है, यदि दुःख आपको
प्रिय नहीं लगता, तो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लीजिए।
शील-पालन का व्रत लीजिए। आपका मंगल होगा !" ॥२८८॥

"आज मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाता हूं,
शील-पालन का व्रत लेता हूं। यह मेरे लिए मंगलकारी
हो ॥२८९॥

पहले मैं नाम-मात्र का ब्राह्मण था, इस समय मैं सचमुच
ब्राह्मण हूं। आज मैं तीनों विद्याओं का ज्ञाता हूं,
वास्तविक वेदज्ञ ब्राह्मण हूॅं, सच्चे अर्थों में स्नातक हूॅं।"
॥२६०॥

६८. चापा

वंकहार जनपद में किसी बहेलिये के सरदार की पुत्री। जिस समय भगवान् बुद्ध सम्यक् संबोधि प्राप्त करने के बाद धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के लिए वाराणसी जा रहे थे, उस समय उन्हें रास्ते मे उपक नामक आजीवक तपस्वी मिला। उपक तपस्वी ने भगवान् के पर्यवदात वर्ण और लावण्यमय शरीर को देखकर उनसे पूछा, "मित्र! किस कारण तुमने संसार त्याग किया है? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम्हें किसके उपदेश मे आस्था है?" भगवान् बुद्ध ने उपक से कहा, "मैं सर्व-विजयी हूँ, सर्वविद् हूॅं, सब से अस्पृष्ट हूं। तृष्णा का विनाश कर मै मुक्त हूं। मैने स्वयं अभिज्ञा प्राप्त की है। मेरा गुरु कोई नहीं है। मेरे सदृश अन्य कोई नहीं है। स्वर्ग में भी मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है। इस समय मै धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के लिए वाराणसी जा रहा हूँ। विमुक्ति की दुंदुभी बजा कर मैं इन सोती हुई, अंधी प्रजाओं को जगाऊँगा।" उपक तपस्वी ने कहा, "तुम्हारा महत् उद्देश्य सफल हो।" ऐसा कह कर वह एक दूसरी पगडंडी से वंकहार-प्रदेश की ओर चला गया। वहां वह व्याधों के उस सरदार का अतिथि बना जिस की पुत्री चापा थी। व्याध-सरदार ने उसका आतिथ्य सत्कार किया। एक दिन व्याध-सरदार अपने पुत्र और भाइयों के साथ शिकार खेलने गया और अपनी पुत्री चापा को तपस्वी की सेवा में नियुक्त कर गया। चापा अतिशय सुन्दरी थी। उपक तपस्वी उसके सौंदर्य पर मोहित हो गया और भोजन छोड़ कर उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि चापा को पाऊँगा तो जिऊँगा, अन्यथा मर जाऊँगा। व्याध-सरदार जब शिकार से कुछ दिनों बाद वापस आया तो उसने तपस्वी को

मरणासन्न पाया। पैर दबाते हुए पूछा, "भंते! क्या आपको कोई बीमारी है? बोलो भंते! जो मुझसे हो सकेगा मैं अवश्य करूँगा।" उपक ने अपना मंतव्य बता दिया। व्याध-सरदार ने पूछा, "क्या कोई शिल्प भी जानते हो?" उपक ने उत्तर दिया, "नहीं"। व्याध-सरदार ने कहा, "क्या बिना कोई शिल्प जानने वाला भी घर बसा सकता है?" उपक तपस्वी ने उत्तर दिया, "आपके शिकार को खरीद कर बाज़ार में बेचा करूँगा।" व्याध-सरदार ने उसे अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया और दोनों का विवाह हो गया। कालांतर में चापा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुभद्र रक्खा गया। रोते हुए शिशु को चुप करने के लिए चापा अपने पति का उपहास करती हुई प्रायः कहा करती, "उपक के पुत्र! चुप हो जा, तपस्वी के पुत्र! चुप हो जा। व्याध के पुत्र! चुप हो जा।" उपक को यह बहुत बुरा लगता। एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा "चापा! तू यह कभी अपने मन में न समझना कि मैं बिल्कुल ही गया बीता हूँ और मेरा कोई सहायक ही नहीं है। 'सर्वविजयी' महापुरुष के साथ मेरी मित्रता है। मैं उसके निकट जाऊँगा।" स्वामी की विरक्ति से प्रमोद अनुभव करती हुई चापा फिर बार-बार ऐसा ही कहती। एक दिन क्रोध के वशीभूत होकर उपक गृहत्याग के लिये प्रस्तुत हो ही गया। चापा ने उसे रोकने के लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु व्यर्थ। उपक घर से चल दिया। उस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। उन्होंने पास के भिक्षुओं से कह दिया, "आज यदि कोई व्यक्ति आवे और पूछे 'सर्वविजयी कहाँ हैं?' तो उसे मेरे पास आने देना।" उपक ने जब आकर ऐसा ही पूछा तो भिक्षुओं ने उसे भगवान् के सामने उपस्थित कर दिया। उपक ने भगवान् से पूछा, "भंते! क्या आप ने मुझे पहचान लिया?" भगवान् ने कहा, "हाँ, पहचान लिया! किन्तु तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे?" उपक ने उत्तर दिया, "वंकहार-जनपद

में।" भगवान् ने कहा, "उपक ! तुम इस समय वृद्ध हो गये हो। क्या तुम भिक्षु-जीवन बिताने में समर्थ हो सकोगे ?" उपक ने उत्तर दिया, "भंते ! मैं प्रव्रजित होऊँगा।" भगवान् के आदेश से उपक को प्रव्रज्या दी गई। उस ने साधना के मार्ग में प्रतिष्ठित होकर काल-यापन किया। स्वामी के गृह-त्याग से व्यथित होकर चापा ने पुत्र को उसकी दादी के अर्पित कर दिया और स्वयं स्वामी की अनुगामिनी बन कर श्रावस्ती में जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उपक के साथ उस की जो बातें हुई थीं, उनको गाथाबद्ध कर यह व्याध-पुत्री हमारे लिये छोड़ गई है :

उपक

पहले का दंडधारी तपस्वी, आज मैं बहेलिया हूं—निश्चय ही तृष्णा के महापंक में पड़ कर मैं उससे पार निकलने में असमर्थ हुआ ॥ २९१ ॥

मुझे अपने सौंदर्य में मुग्ध समझ कर, चापा अपने पुत्र को खिलाने के बहाने मेरा उपहास करती।
चापा के बंधन को उच्छिन्न कर मैंने फिर प्रव्रज्या की शरण ली ॥ २९२ ॥

चापा

हे महावीर ! हे महामुनि ! मुझ पर क्रोधित मत होओ।
क्रोध के वश में हुए पुरुष को आत्म-शुद्धि प्राप्त नहीं होती,
तप तो प्राप्त होगा ही कैसे ? ॥ २९२ ॥
मैं इस 'नाला'[1] जगह को आज छोड़ दूँगी, अब कौन इस नाला गाँव में रहेगा ?

---

[1]मगध देश में एक स्थान। यह उपक का जन्मस्थान था। यहीं पर वह विवाह के अनंतर चापा के साथ रहा था।

जहाँ धर्मजीवी संन्यासी स्त्री के सौंदर्य-पाश में बद्ध हो गए ॥ २९४ ॥

हे कृष्ण[1] ! लौट आओ ! पहले की तरह ही कामों का भोग करो।

मैं तुम्हारी दासी हूँ, मेरे भाई-बंधु भी तुम्हारा सम्मान करेंगे। ॥ २९५ ॥

उपक

चापा ! तू मुझे जितना देने को कहती है उसका चतुर्थांश भी यदि तेरे प्रेम को चाहने वाला पुरुष पावे तो उससे ही वह अपने को धन्य माने ॥ २९६ ॥

चापा

कृष्ण ! गिरि-शिखर पर पुष्पित तक्कारि वृक्ष के समान, या फूले दाड़िम वृक्ष के समान या द्वीप में उत्पन्न पाटलि (गुलाब) के समान,
मैं सौंदर्य और यौवन में परिपूर्ण हूँ ॥ २९७ ॥

तुम्हारे लिए मैं शरीर में पीत चंदन का लेप करूँगी,
काशी के बने रेशमी वस्त्र धारण करूँगी। स्वामी ! इतनी रूपवती को छोड़ कर तुम कहाँ जाओगे ?" ॥ २९८ ॥

उपक

चापा ! जिस तरह बहेलिया पक्षी को धर पकड़ने की चेष्टा करता है, उसी तरह तेरा सौंदर्यमय रूप अब मुझे बाँध नहीं सकेगा ॥ २९९ ॥

---

१. संभवतः उपक काले रंग का था। इसीलिए इसकी स्त्री उसे 'कृष्ण' (काले) कह कर संबोधित करती थी।

चापा

कृष्ण ! यह मेरा पुत्र रूपी फल है। देख, इसका पिता तू ही है।
इस पुत्रवाली को छोड़ कर तू कैसे जायगा ? ॥ ३०० ॥

उपक

वीर ज्ञानी जन सुत, धन, जन सबको छोड़ कर प्रव्रज्या ले लेते हैं, जैसे हाथी बंधनों को तोड़ कर मुक्त हो जाता है ॥ ३०१ ॥

चापा

इसी क्षण मैं तेरे इस पुत्र को यदि डंडे या छुरी से मार कर धरती पर गिरा दूं,
तब तो पुत्र-शोक के भय से तू जा न सकेगा ? ॥ ३०२ ॥

उपक

निष्ठुर नारी ! यदि इस पुत्र को तू गीदड़ या शिकारी कुत्ते के मुख में डाल दे तो भी मुझे लौटाने में समर्थ नहीं होगी ! ॥ ३०३ ॥

चापा

हाय ! यदि ऐसा ही है तो आर्य ! जाओ । तुम्हारा मंगल हो।
पर यह तो बता जाओ कि तुम कहां जाओगे ? किस गाँव में, किस नगर में या किस राजधानी में ? ॥ ३०४ ॥

उपक

पहले मैं श्रमण न होते हुए भी अपने को श्रमण मानता था, और गाँव से गाँव, नगर से नगर, और राजधानी से राजधानी में विचरण करता था ॥३०५॥

अब मैंने सुना है—उन भगवान् बुद्ध ने नेरंजरा नदी के किनारे पर प्राणिमात्र को संपूर्ण दुःख-विमोचनकारी धर्म का उपदेश दिया है,
मैं उन्हींके पास जाऊँगा, वे मेरे शास्ता होंगे ॥३०६॥

चापा

तो उन अद्वितीय, लोक-स्वामी के चरणों में मेरी भी वंदना विज्ञापित करना। फिर लोक-स्वामी की प्रदक्षिणा कर, मेरी भी दक्षिणा उन के चरणों में अर्पित कर देना ॥३०७॥

उपक

चापा! तेरी प्रार्थना को रखना मेरा कर्तव्य है! तू जैसा कहती है मैं वैसा ही करूँगा।
अद्वितीय लोक-स्वामी को तेरी ओर से वंदना विज्ञापित करूँगा।
फिर उनकी प्रदक्षिणा कर मैं तेरी भी भेंट उनके चरणों में अर्पित कर दूँगा। ॥३०८॥

गाथा आगे चलती है:

तदुपरांत उपक नेरंजरा नदी के किनारे पर गया। उसने देखा कि भगवान्, निर्वाण-पद का उपदेश कर रहे हैं ॥३०९॥
दुःख का, दुःख के हेतु का, दुःख की निवृत्ति का और दुःख-निवृत्ति के उपाय-रूपी आर्य अष्टांगिक मार्ग का, उपदेश करते तथागत को उसने देखा ॥३१०॥

उपक ने भगवान् के चरणों की वंदना की। फिर उनकी प्रदक्षिणा कर चापा के अनुरोध को पूरा किया।
तदुपरांत भगवान् से प्रव्रज्या लेकर वह तीनों विद्याओं का ज्ञाता हो गया, उसने बुद्ध-शासन को पूरा किया! ॥३११॥

६६. सुन्दरी

वाराणसी में सुजात नामक ब्राह्मण की कन्या। अनुपम सुंदरी होने के कारण सुन्दरी नाम। वयः प्राप्त होने पर उसके छोटे भाई का देहान्त हो गया। उसके शोक में दुःखी होकर सुजात इधर-उधर घूमता रहा। एक दिन भिक्षुणी वाशिष्ठी से उसकी भेंट हो गई। भिक्षुणी ने उसके शोक का कारण पूछा। कारण बताने पर भिक्षुणी ने उसे अपने पुत्र-वियोगों का वर्णन करते हुए बताया कि वह तो अब शांत है। सुजात ने जिज्ञासा की, "आर्ये! आप किस प्रकार दुःख-विमुक्त हुईं?" भिक्षुणी ने उसे बुद्ध, धर्म और संघ की शरण का उपदेश दिया। सुजात ने पूछा, "बुद्ध इस समय कहाँ हैं?" भिक्षुणी ने उत्तर दिया, "मिथिला में।" ब्राह्मण मिथिला की ओर चल दिया। जाकर भगवान् के चरणों की पूजा की और प्रव्रज्या लेकर पूर्ण साधक बन गया। मिथिला से वाराणसी को आनेवाले गाड़ीवानों ने सुजात की पत्नी को सूचित किया कि ब्राह्मण तो प्रव्रजित हो गया। सुन्दरी ने इस समाचार को सुन कर माता से कहा, 'मां, मैं भी संसार त्याग करूँगी।" माँ ने कहा, "बेटी! इस घर की सारी धन-सम्पत्ति तेरी है। तू ही इस वंश की एकमात्र उत्तराधिकारिणी है। तू गृह-त्याग मत कर।" किंतु सुन्दरी ने उत्तर दिया, "धन-संपत्ति से मेरा कोई प्रयोजन नहीं रहा है। माता, मैं तो संसार-त्याग करूँगी।" माता से अनुमति ले कर सुन्दरी ने वाराणसी जाकर प्रव्रज्या ले ली। ज्ञान की पूरी मस्ती में एक बार उसने विचार किया, "मैं भगवान् बुद्ध के सामने जाकर सिंहनाद करूँगी।" भगवान् बुद्ध उस समय श्रावस्ती में थे। वहाँ के लिए वह चल दी। भगवान् बुद्ध ने उसका स्वागत करते हुए उसे परम-ज्ञान-प्राप्त साधिका बताया। इस पर सुन्दरी ने अपने को बुद्ध की औरस, मुखनिःसृत कन्या कहते हुए अपनी साधना का वर्णन किया। दूसरे दिन उसकी माता भी वहाँ आ गई और उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण

की। विमुक्ति-सुख के उल्लास में सुन्दरी ने अपने पिता की और अपनी उक्तियों को मिला कर गाया है:

सुजात

ब्राह्मणी वाशिष्ठी! पहले तो तू पुत्रों को खोकर दिन-रात रोया करती थी, आर्तनाद किया करती थी ॥३१२॥
आज तू सात पुत्रों को खोकर भी शोक से अभिभूत क्यों नहीं होती? ॥३१३॥

वाशिष्ठी

ब्राह्मण! तुम्हारे और मेरे दोनों के ही अतीत काल में सैकड़ों पुत्र हुए और मर गए, सैकड़ों बंधु-बांधव हुए और मर गए ॥३१४॥
किंतु जन्म और मरण की मुक्ति का मार्ग अब मुझे ज्ञात हुआ है, अतः अब मुझे न और शोक करना है, न विलाप करना है, और न करुण क्रंदन ॥३१५॥

सुजात

वाशिष्ठी! तू बड़ी अद्भुत बात कह रही है।
किससे उपदेश प्राप्त कर तू ऐसी वाणी कह रही है? ॥३१६॥

वाशिष्ठी

ब्राह्मण! मिथिला नगर में उन भगवान् सम्यक् संबुद्ध ने प्राणियों को सब दुःखों से मुक्ति देनेवाला उपदेश दिया है ॥३१७॥
उन्हीं पूर्ण पुरुष के आवागमन-निरोधक उपदेश को सुन कर मुझे सद्धर्म का ज्ञान हुआ है। उसी क्षण से मेरा पुत्र-शोक दूर हुआ है ॥३१८॥

सुजात

मैं भी मिथिला नगर जाऊँगा। कदाचित् वे भगवान् मेरे भी सब दुःखों को दूर कर दें ॥३१९॥

मिथिला जाकर ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया, बुद्ध जो कि मुक्त हो गए हैं, और जिन्हें आवागमन नहीं है। सब दुःखों से पार गये उन मुनि ने उस ब्राह्मण को धर्मोपदेश दिया ॥३२०॥

दुःख, दुःख के हेतु, दुःख के निरोध और दुःख के निरोध की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश भगवान् ने उसे दिया ॥३२१॥

उससे ब्राह्मण को सद्धर्म का ज्ञान हुआ, उसने प्रव्रज्या का अवलंबन लिया।
तीन रातों के अन्दर ही सुजात तीनों विद्याओं का ज्ञाता हो गया ॥३२२॥

"सारथि! रथ लेकर घर को लौट जाओ। ब्राह्मणी से कुशल-मंगल पूछ कर कहना कि सुजात ब्राह्मण संसार त्याग कर विरक्त हो गया है और तीन रातों के अन्दर ही उसने तीनों विद्याएँ प्राप्त कर ली हैं।" ॥३२३॥

सारथि रथ और सहस्र सम्पत्ति को लेकर घर लौट आया और ब्राह्मणी से कुशल-क्षेम कहने के बाद उसने कहा कि ब्राह्मण प्रव्रजित हो गया।
तीन रातों के अन्दर ही सुजात ने तीनों विद्याएँ साक्षात्कार कर लीं! ॥३२४॥

सुन्दरी की माता

सारथि! यह समाचार सुन कर कि ब्राह्मण ने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया है, मैं तुझे इस अश्व, रथ और सहस्र धन सबको दान करती हूँ ॥३२५॥

सारथी

ब्राह्मणी! ये अश्व, रथ और सहस्र धन आपके ही

पास रहूँ। मैं भी श्रेष्ठ ज्ञानी के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा ॥३२६॥

सुन्दरी की माता

सुन्दरी! हाथी, गौ और मणि-रत्नों से भरे इस घर को छोड़ कर तेरे पिता ने प्रव्रज्या ग्रहण की है।
सुन्दरी! इस समय यह सभी सम्पत्ति तेरी है। तू ही इसकी एकमात्र उत्तराधिकारिणी है। तू इसका उपभोग कर ॥३२७॥

सुन्दरी

हाथी, गौ और मणि-रत्न आदि से भरे हुए इस सुरम्य घर को पुत्र-शोक से दुःखी होकर मेरे पिता ने त्याग दिया और प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।
मैं भी अपने भाई के शोक मे प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी ॥३२८॥

सुन्दरी की माता

सुन्दरी! तेरी इच्छा पूर्ण हो! दूसरों के भोजन से बची हुई भिक्षा और धूल-धूसरित भिक्षुणी-वस्त्र तुझे चित्त-मलों से मुक्त करेंगे, परलोकमें शान्ति देंगे ॥३२९॥

सुन्दरी

आर्ये! तीनों शिक्षाओं से मैं शिक्षित हूँ। मेरे शोधित हुए दिव्य चक्षु हैं। पूर्व जन्म के निवासों को, जहाँ मुझे रहना पड़ा, मैं जानती हूँ ॥३३०॥

मंगलमयी देवि! तू भिक्षुणी-संघ की भूषण स्वरूपा है!
तेरा ही आश्रय लेकर मैं तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूँ और बुद्ध-शासन का मैंने पूरा कर लिया ॥३३१॥

आर्ये! अनुमति दो! मैं श्रावस्ती जाने की इच्छुक हूँ।

सर्वोत्तम पुरुष बुद्ध के समीप जाकर मैं सिंहनाद करूँगी।
॥३३२॥

"सुन्दरी! देख, ये सोने की-सी कांति वाले, पर्यवदात शरीर-छवि वाले, त्रिलोकी के शिक्षक हैं।
ये असंयतों को संयमी बनाने वाले, पूर्ण निर्भय पुरुष, भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं" ॥३३३॥

"देव! सुंदरी आई है। अवलोकन करो।
यह सुन्दरी जन्म-मृत्यु का मूल उच्छेदन कर पूर्ण मुक्त है, यह बंधन-मुक्त है, सब कर्तव्यों को पूरा कर यह चित्त-मल-रहित हो गई है।" ॥३३४॥

"हे महावीर! मैं सुन्दरी वाराणसी से आई हूँ। मैं आपकी शिष्या हूँ। आपकी वंदना करती हूँ ॥३३५॥

आप बुद्ध हैं, त्रिलोकी के शास्ता हैं, ज्ञानी ब्राह्मण हैं।
मैं आपकी दुहिता हूँ!
आपके हृदय से उत्पन्न! आपके मुख से उत्पन्न!
मैं आपकी सगी पुत्री हूँ।
मैं सम्पूर्ण कर्तव्यों को समाप्त कर निष्पाप हो गई हूँ" ॥३३६॥

"कल्याणी! आ, तेरा स्वागत है। तू अ-दूर से ही आई है।
जो आत्म-संयमी हैं, राग-मुक्त हैं, बंधन-हीन हैं,
जो कर्तव्य-कर्म को समाप्त कर निष्पाप होगए हैं,
वही इस प्रकार आकर शास्ता के पैरों की वंदना करते हैं।" ॥३३७॥

७०. शुभा—१

राजगृह के किसी सोनार की कन्या। अतिशय सौंदर्य के कारण शुभा नाम। वयः प्राप्त होने पर एक दिन भगवान बुद्ध के दर्शन करने गई। वंदना कर एक ओर बैठ गई। भगवान् ने उसे धर्मोपदेश किया।

वहीं स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो गई। बाद में महाप्रजापती गोतमी के पास जाकर साधना करने लगी। उसके आत्मीय जन बार-बार आकर उसे घर लौट चलने के लिए अनुरोध करने लगे। किन्तु उसने सांसारिक जीवन के दोष दिखा कर सबको लौटा दिया। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपनी इन्हीं सब स्मृतियों को प्रत्यक्ष के समान अनुभव करती हुई शुभा गाती है :

मुझ तरुणी, निर्मल-वसना ने जिस दिन धर्म का श्रवण किया,
उसी दिन इस अप्रमादिनी को सत्य का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो गया ॥३३८॥

उसी दिन से मुझे विषय-भोगों में गम्भीर अनासक्ति पैदा हुई।
काया को सत्य मानने के विचार में भय देखकर मैं निष्कामता में मन लगाने वाली हुई ॥३३९॥

जाति के भाई-बंधु, दास, सेवक, ग्राम, विस्तृत क्षेत्र,
एवं अन्यान्य रमणीय उपभोग वस्तुओं का मैंने त्याग कर दिया।
विशाल ऐश्वर्य को दूर फेंक कर मैंने प्रव्रज्या का अवलंबन लिया ॥३४०॥

पूर्ण श्रद्धा से मैंने संसार का त्याग कर सद्धर्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया! सोने-चांदी से मिलने वाले सब भोगों को छोड़ कर मैंने अकिंचनता में मन लगाया ॥३४१॥

सोने और चांदी, न ज्ञान के लिए हैं और न शान्ति के लिए,
न ये संन्यास के अनुकूल ही हैं और न ये श्रेष्ठ (आर्य) धन ही हैं ॥३४२॥

इनके प्राप्त होने पर लोभ, मोह, विषयेच्छा और रजोगुण ही बढ़ते हैं।
आशंकाएँ और हैरानी-परेशानियाँ पैदा होती हैं, फिर ये सदा स्थिर भी नहीं रहते ॥३४३॥

सोने-चाँदी में आसक्त मनुष्य मतवाले हो जाते हैं। उनके चित्त में क्लेश पैदा हो जाते हैं।
भोग-लालायित मनुष्य एक दूसरे से संघर्ष करते हुए आपस में बड़ी शत्रुता भी बाँध लेते हैं ॥३४४॥

वध, बंधन, निर्यातन एवं विनाश, कामासक्त मनुष्यों की यही गति है। कामासक्त मनुष्यों के बहुत क्लेश देखे जाते हैं ॥३४५॥'

तो फिर मेरे भाई-बन्धुओ! किस लिए तुम मेरे शत्रु बन कर मुझे विषयों में लगाते हो? क्या तुम नहीं जानते कि विषयों में भय और अमंगल देख कर ही मैं प्रव्रजित हुई हूँ ॥३४६॥

सोने और चाँदी के द्वारा चित्त-मल नाश नहीं किये जा सकते।
निश्चय ही भोग समूह बड़े शत्रु है, निर्दय हैं, प्राणहारी हैं। मनुष्य को जैसे शर-विद्ध करके डाल देते हैं, उसे बंधन-दशा में ले जाते हैं ॥३४७॥
तो फिर मेरे भाई-बन्धुओ! किस लिए तुम मेरे शत्रु बन कर मुझे विषयों में लगाते हो? जानते नहीं, मैं मुँड़े हुए सिर वाली हूँ, चीवर वसना हूँ, प्रव्रजित हूँ ॥३४८॥
दूसरों से बचे हुए अन्न को भिक्षा में पाना और म्लान चीवर पहनना, यही मेरे लिए अनुकूल है। गृहहीन जीवन लेकर यही मेरी अनुकूल जीवन-सामग्री है ॥३४९॥

जितने भी मानुषी या स्वर्गीय भोग हैं, जिन महर्षियों ने इनकी तृष्णा को छोड़ दिया,
वही शांत और विमुक्त हैं, उन्होंने ही अचल सुख को पाया है ॥२५०॥

मुक्त भोगों में मत ललचाओ, भोगों में पड़ कर मनुष्य का त्राण नहीं है ।
भोग-समूह प्राणहारी शत्रु हैं, वञ्चक हैं, प्रज्वलित अग्निपुंज के समान दुःखदायी हैं ॥२५१॥

भोग-समूह विघ्नों से भरे हुए हैं, भय-जनक हैं, जुगुप्सामूलक हैं, कंटकाकीर्ण हैं । वे विषम, अन्धी गुफा के समान हैं, मनुष्यों के ज्ञान का नाश करने वाले हैं ॥२५२॥

ऊँचे फन उठाए हुए सर्प की तरह इन भोगों का भी उसना बड़ा भयंकर है ।
केवल निर्बोध, अज्ञानांध और संसारासक्त प्राणियों को ही ये प्रीतिकर दिखाई पड़ते हैं ॥२५३॥

लोक के बहुसंख्यक ज्ञान-हीन मनुष्य जो विषय-रूपी कीचड़ में लिपटे रहते हैं, जन्म और मृत्यु के मुक्ति-मार्ग को नहीं जानते ॥२५४॥

भोग-तृष्णा ही मनुष्य की दुर्गति का कारण है ।
मनुष्य अपने रोग को अपने आप ही बुलाते हैं ॥२५५॥
भोग-तृष्णा ही से शत्रु पैदा होते हैं, चित्त-संताप पैदा होते हैं, क्लेश पैदा होते हैं ;
भोग-समूह ही मनुष्य को जन्म और मृत्यु के बंधन में डालते हैं ॥२५६॥

भोग-तृष्णा ही से उन्मत्तता और प्रलाप की उत्पत्ति है । यह चित्त को मथ डालती है ।

प्राणियों के क्लेश के लिए यही मार का पाश फैलाती है। ॥३५७॥

भोग-समूह अनंत दुष्परिणामों के आकर हैं, बहुत दुःखों से भरे हुए हैं, महा विष वाले हैं।
ये अशांतिकर हैं, लड़ाई-झगड़ा कराने वाले हैं और (मानव-जीवन के) उज्ज्वल पक्ष का शोषण करने वाले हैं। ॥३५८॥

इसलिए इतनी दूर अग्रसर होकर, अब मैं तो तृष्णा-जनित व्यसन में पड़ूंगी नहीं।
निर्वाण में ही अभिरत रहने में मुझे आनंद है ॥३५९॥

विषय-वासनाओं के साथ युद्ध करती हुई अब तो मैं परम शांति की ही इच्छुका हूँ।
एकाग्र चित्त और अप्रमादिनी होकर अब तो मैं संयोजनों (बंधनों) के उच्छिन्न करने में ही लगी हूँ ॥३६०॥

इस मार्ग में शोक नहीं है, मल नहीं है, अमंगल नहीं है। जिस सरल, मंगलकारी आर्य अष्टांगिक मार्ग के द्वारा महर्षि लोग संसार से पार चले गये, उसीके अनुसरण में मैं लीन हूँ ॥३६१॥

देखो ! यह सोनार-कन्या शुभा धर्म में स्थित होकर, वासना पर विजय प्राप्त कर वृक्ष के नीचे ध्यान-लीन बैठी है ॥३६२॥

जिस दिन इसने श्रद्धा-पूर्वक उत्पलवर्णा से प्रव्रज्या ग्रहण की और सद्धर्म की शोभा को बढ़ाया,
उसका यह आठवाँ दिन है, जबकि इसने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया, मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली ॥३६३॥

अब यह भिक्षुणी मुक्त और अनृणी हुई! सबके द्वारा प्रशंसनीय हुई!
क्योंकि श्रद्धादि जीवनी-शक्तियों का इसने पूर्ण विकास कर लिया,
सब बंधनों से विमुक्ति प्राप्त कर ली,
इसके सब कर्तव्य पूरे हुए,
यह पाप-विमुक्त हुई ॥३६४॥

देखो, भूतपति इन्द्र अपने समग्र ऐश्वर्य के साथ, देवगणों के सहित आकर इस सोनार कन्या शुभा की वंदना कर रहा है! ॥३६५॥

चौदहवाँ वर्ग

७१. शुभा—२

राजगृह के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में जन्म। शरीरावयवों की सुन्दरता के कारण शुभा नाम। राजगृह में भगवान् बुद्ध के आने पर उनके उपदेश को सुनकर उपासिका हो गई। बाद में महाप्रजापती गोतमी के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण की। उत्कट साधना करते हुए उसे पूर्व-जन्मों का ज्ञान उत्पन्न हुआ। ऐन्द्रिय सुख-भोग के दुष्परिणामों का चिन्तन कर निष्पाप जीवन बिताने लगी। एक दिन शुभा दिन के ध्यान के लिए जीवक के आम्रवन में जा रही थी। रास्ते में उसे एक भ्रष्टचरित्र युवक मिला जो उसके मार्ग को रोक कर उसे धर्म से पतित करने की चेष्टा करने लगा। शुभा के सौंदर्य से मुग्ध होकर वह उसे नाना प्रकार के प्रलोभनों से लुभाने लगा। शुभा ने उसे भोग के दुष्परिणामों और अपने भिक्षुणी-भाव का स्मरण कराया। किन्तु धूर्त तो विषयांध हो रहा था। शुभा ने सोचा—यह धूर्त मेरे नेत्रों से आकृष्ट होकर अन्धा हो रहा है। ऐसा सोच कर उसने अपनी एक आँख फोड़ ली और उसे युवक के हाथ में देते हुए कहा—यह ले! यह आँख ही सारे अनर्थ की जड़ है। युवक भय से कंपित हो उठा। उसकी भोग-लालसा न जाने कहां चली गई। उसने भिक्षुणी के पैरों पर पड़ कर उससे क्षमा-याचना की। शुभा लौट कर भगवान् बुद्ध के पास आई। भगवान् के दर्शन करते ही उसकी आँख पहले की तरह हो गई। उसकी देह से निर्मल पवित्रता की किरणें स्फुरित होने लगीं। भगवान् ने उसे मार्ग में और अधिक उन्नति करने के लिए ध्यान-विशेष का उपदेश दिया। शुभा ने थोड़े ही काल में ज्ञान का विकास करते हुए अपनी

कृतकृत्यता अनुभव की। धूर्त युवक के साथ हुए अपने संलाप को गाथा-बद्ध करती हुई, शुभा ज्ञान की पूर्ण मस्ती में गाती है :

जीवक के सुरम्य आम्रवन की ओर जाती हुई शुभा नाम की भिक्षुणी को मार्ग में एक लम्पट पुरुष ने रोका।
शुभा ने उससे कहा—॥३६६॥

"भाई! मैंने तेरा क्या अपराध किया है जो तू मुझे रास्ते में रोकता है?
क्या तू नहीं जानता कि विरक्त भिक्षुणियों को स्पर्श करना पुरुषों के लिए अनुचित है? ॥३६७॥

भगवान् बुद्ध के उपदेश से शिक्षित होकर मैं शास्ता के गौरव-वान् शासन में स्थित हूं :
मैं विशुद्ध देह वाली और निर्मल चित्त वाली हूं। तू मेरा मार्ग क्यों रोकता है? ॥३६८॥

तू कलुषित चित्त है, मैं निर्मल चित्तवाली हूं: तू रागयुक्त है, मैं राग-हीन हूं, तू मलिन है, मैं मलिनताशून्य हूं. सब प्रकार मेरा चित्त विमुक्त है: तू मेरे मार्ग में आकर क्यों खड़ा होता है?" ॥३६९॥

"तू तरुणी है, निष्पाप है। प्रव्रज्या तेरे लिए क्या करेगी?
इस काषाय वस्त्र को तू दूर फेंक।
चल, इस पुष्पित वन में हम रमण करें ॥३७०॥

पुष्प-रेणुओं से भरत हुए वृक्ष चारों ओर मधुर गंध बिखेर रहे हैं: यह प्रथम वसन्त का सुखकारी समय है. चल, इस पुष्पित वन में हम रमण करें ॥३७१॥

पुष्पों को सिर पर धारण किए ये वृक्ष वायु से प्रकम्पित होकर कैसी सुन्दर मर्मर ध्वनि कर रहे हैं!

बता इस वन में अकेली घूमती हुई तू क्या तृप्ति प्राप्त करेगी? ॥३७२॥

हिंस्र जन्तुओं से भरे हुए, मस्त हाथियों से रौंदे हुए,
इस निर्जन, भयानक, विशाल वन में, बता बिना सहायक के अकेली तू कैसे जा सकेगी ? ॥३७३॥

सोने की पुतली के समान तू इस वन में विचरण कर रही है । अथवा तू नन्दन-कानन की अप्सरा ही है। अनुपमे ! तू काशी के सुन्दर, सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों से सुशोभित होने योग्य है ॥३७४॥

इस वन-भूमि में मैं तेरा दास होकर तेरी सेवा करूँगा, यदि तू इसके भीतर चल कर मेरे साथ रमण करे। हे किन्नरी के-से मन्द लोचन वाली ! पृथिवी में तेरे समान मुझे और कोई प्रिय नहीं है ॥३७५॥

यदि मेरी बात को तू स्वीकार करे तो चल हम दोनों गृह-वास स्वीकार करें ।
सुन्दर प्रासाद में तू सुख-पूर्वक रहेगी, जहाँ अनेक दासियाँ तेरी सेवा करेंगी ॥३७६॥

काशी के सुकोमल वस्त्रों को तू पहनेगी, सुगन्धित पुष्प-मालाओं को धारण करेगी, अङ्गलेपों से अपने शरीर को सुशोभित करेगी। सुन्दरी ! मैं तेरे लिए सोने, मणियों और मोतियों के अनेक आभरण बनवाऊँगा ॥३७७॥

सुकोमल, स्वच्छ वस्त्र से आच्छादित होकर, नवनिर्मित ऊन और तूलिका से समन्वित, चन्दन से चर्चित, इत्रों की सुगन्ध से आसिक्त, बड़े मूल्य वाले पलंगों पर तू शयन करेगी। ॥३७८॥

अन्यथा हे ब्रह्मचारिणि ! सरोवर के इस कमल के समान जिसका अबतक किसी मनुष्य ने सेवन नहीं किया, तू भी अपने विशुद्ध और अबतक किसी के द्वारा न छुए हुए शरीर में वार्धक्य को प्राप्त करेगी।" ॥३७६॥

"मूढ़ ! जिस देह को देख कर तू इतना मुग्ध हुआ है, वह तो मांसादि गन्दगियों से भरी हुई केवल लाश है, श्मशान को बढ़ाने वाली है, क्षणभंगुर है।
इस देह में ऐसा क्या है जिसको देखकर तू विमुग्ध हुआ ऐसा कह रहा है ?" ॥३८०॥

"सुन्दरी ! हिरणी के नेत्रों के समान अथवा पर्वत-पृष्ठ पर बैठी हुई किन्नरी के नेत्रों के समान तेरे दोनों सुन्दर नेत्र हैं। ये तेरे दोनों नेत्र ही मेरी काम-वासना की वृद्धि कर रहे हैं। इन्हें देख कर ही मैं तुझ पर आसक्त हुआ हूँ ॥३८१॥

कमल-कोश को भी मात करने वाले, तेरे स्वर्ण-सदृश, स्वच्छ मुख-मंडल में स्थित इन दोनों नेत्रों को देख कर मेरी काम-वासना बहुत बढ़ रही है। हे प्रियदर्शिनी ! तेरी दोनों भौंहें कितनी विस्तीर्ण हैं, तेरे नेत्र कितने मादक हैं ! ॥३८२॥

हे किन्नरी के-से मन्द लोचनवाली ! तू दूर खड़ी है, फिर भी तेरे दोनों सुन्दर नेत्रों के समान प्रिय वस्तु मेरे लिए संसार में और कोई नहीं है।" ॥३८३॥

"दुष्ट जहाँ जाने का मार्ग ही नहीं है, वहाँ तू जाना चाहता है। मानो चन्द्रमा को खिलौना बनाने के लिए तू उसे खोजने निकला है।
मूढ़ ! तू सुमेरु को ही लाँघना चाहता है, जो कि तू बुद्ध की पुत्री के पीछे इस प्रकार लगता है ॥३८४॥

देख, स्वर्ग-लोक और मनुष्य-लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे अन्दर राग का उद्रेक कर सके। राग किस प्रकार का होता है, यह भी मैं नहीं जानती। आर्य-मार्ग में स्थित होकर मैंने उसका समूल नाश ही कर डाला है ॥३८५॥

हाथ से फेंकी हुई चिनगारी के समान अथवा उँड़ेले हुए विष के प्याले के समान, मेरा राग न जाने कहाँ अदृश्य हो गया है। आर्य-मार्ग में स्थित होकर मैंने उसका समूल नाश ही कर डाला है ॥३८६॥

जिस स्त्री ने सत्य का दर्शन न किया हो अथवा शास्ता से जिसने उपदेश न पाया हो, उसीको तू जाकर लुभा।

मैं तो ज्ञान की शक्ति से सम्पन्न हूँ।
मुझसे तू पराजित ही होगा ॥३८७॥
निन्दा और स्तुति में, दुःख और सुख में, मुझे सदा कायिक-मानसिक जागरूकता उपस्थित रहती है।
जो कुछ सस्कृत है, सब अशुभ है, ऐसा जानकर संस्कारों से मैं पूर्णतः अनासक्त हो चुकी हूँ ॥३८८॥

क्या तू यह नहीं जानता कि आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करने वाली मैं बुद्ध की शिष्या हूँ,
मैंने (वासना के) तीर को निकाल फैंका है;
वेदनाओं और चित्त-मलों से रहित होकर मैं सूने स्थानों में जाकर ध्यान करती हूँ, इसीमें मेरा आनन्द है ॥३८९॥
एक समय मैंने देखा था—सुन्दर नई लकड़ी से बनी हुई सुचित्रित कठपुतली खूँटी और ताँत से बँधी हुई नाना प्रकार के सुन्दर नाच और भाव-भंगी दिखा रही थी ॥३९०॥
खूँटी और ताँत के हटा लेने पर कठपुतली छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये;

बता, इस मलाकोष पुतली का कौन-सा अङ्ग तेरे मन को मोहित करता है ॥३६१॥

यही हाल मनुष्य की देह का है,
उसके विविध अवयव और क्रियाएँ धर्मों (अवस्थाओं) के आधार पर चल रही हैं। यदि ये अवस्थाएँ उत्पन्न न हों, तो उसके अवयव भी छिन्न-भिन्न हो जावें। इन छिन्न-भिन्न अवयवों में बता कौनसा अवयव तेरे मन को आसक्त करता है ? ॥३६२॥

यह शरीर तो भीत पर बने हरताल से रंगे हुए चित्र के समान है। तू उसे वास्तविक समझ बैठा है। मूर्ख ! यह तेरी मिथ्या, विपरीत दृष्टि है ॥३६३॥

स्वप्न में स्वर्ण-वृक्ष को देख कर तू अन्धा होकर उसके पीछे दौड़ रहा है।
आदमियों की भीड़ में जादूगर के द्वारा दिखाए हुए जादू को देख कर तू उसके पीछे दौड़ रहा है ॥३६४॥

आँखें क्या हैं ? दो गड्ढों में स्थित, अश्रुओं से सिंचित, तरल बुद्बुद मात्र !
इन गुणों का मिश्रित पिंड ही चक्षु कहलाता है। इससे अधिक यह कुछ नहीं है।" ॥३६५॥

यह कह कर उस प्रियदर्शिनी ने अत्यन्त निर्विकार चित्त से उसी क्षण अपनी आँख फाड़ कर उस मनुष्य को देते हुए कहा, "यह मेरी आँख है, ले !" ॥३६६॥
उसी क्षण उस दुष्ट मनुष्य की काम-पिपासा अन्तर्हित हो गई। उसने क्षमा-याचना करते हुए कहा, "ब्रह्मचारिणि ! तेरा मंगल हो। मैं फिर इस प्रकार का दुष्कर्म नहीं करूंगा। हाय ! ॥३६७॥

मैं प्रज्वलित अग्नि को आलिंगन करने चला था, विषाक्त सर्प को स्पर्श करने चला था ! देवी ! तू स्वास्थ्य लाभ कर ! मुझे क्षमा कर, तेरा मंगल हो !" ॥३९८॥

उसी समय वह भिक्षुणी मुक्त हो गई। मुक्त होकर वह भगवान् सम्यक् संबुद्ध के पास गई।

पुण्यलक्षण महापुरुष के दर्शन करते ही उसकी आँख पहले की तरह ही (स्वस्थ) हो गई ॥३९९॥

पन्द्रहवाँ वर्ग

७२. ऋषिदासी

उज्जयिनी के एक कुलीन, सदाचार-सम्पन्न, वैश्य-कुल में जन्म। वयः प्राप्त होने पर माता-पिता ने एक योग्य वर को प्रदान किया। विवाह के बाद एक मास तक सुख से पति के पास रही। स्वयं पति-परायणा और गृह-कार्य में दक्ष तथा सदाचारिणी; किन्तु फिर भी पति के पसन्द नहीं आई, अतः घर से निकाल दी गई। पिता ने दो बार पुनर्विवाह कर दिया, किन्तु वहाँ भी सुखी नहीं हो सकी। अन्त में क्षुब्ध होकर पिता की अनुमति से जिनदत्ता नामक भिक्षुणी से उपसम्पदा लेकर भिक्षुणी-संघ में प्रवेश किया। तीव्र साधना कर थोड़े ही समय में निर्वाण की शांति प्राप्त की। एक दिन पाटलिपुत्र में भोजन करने के बाद गंगा के पुलिन पर ध्यान के लिए बैठी थी। उसी समय उसकी सहचरी बोधि नामक भिक्षुणी भी वहाँ आई। दोनों में धार्मिक संलाप होने लगा। ऋषिदासी अपने इस जीवन और पूर्व जीवन के अनुभवों का वर्णन करती हुई इन गाथाओं को कहती है। पहले की तीन गाथाएं त्रिपिटक का संकलन करने वाले स्थविरों ने सम्बन्ध मिलाने के लिए लिख दी हैं :

> पाटलि नामक कुसुम के नाम वाले (कुसुमपुर) पाटलिपुत्र नगर में शाक्य-कुलोद्भूत दो कुलीन, गुणवती महिलाएं थीं ॥४००॥
>
> उनमें से एक का नाम था ऋषिदासी, दूसरी का था बोधि।

दोनों ही सदाचारिणी, ध्यान में रत, बहुश्रुता और चित्त-मल-रहित थीं ॥४०१॥

एक दिन भिक्षा के बाद भोजन कर और बर्तनों को माँज-धोकर, दोनों एकांत में बैठ कर, इस प्रकार संलाप करने लगीं—॥४०२॥

"देवी ऋषिदासी ! तू प्रसन्नमुख और यौवन-संपन्ना है। किस कारण संसार से आसक्ति छोड़कर तूने प्रव्रज्या ली और आज ऐसा निष्काम जीवन बिता रही है ?" ॥४०३॥

इस प्रकार पूछी जाने पर ऋषिदासी ने, जो धर्मोपदेश करने में बड़ी कुशल थी, उस एकांत स्थान में ऐसा कहा :
"बोधि ! जिस प्रकार मैंने प्रव्रज्या ली, उसे सुन ॥४०४॥

मेरा पिता उज्जयिनी नगरी का एक धर्मात्मा, सदाचारी सेठ था।
मैं उसकी एकमात्र, प्रियतम, अनुकूल कन्या थी ॥४०५॥

साकेत नगर से आया हुआ एक अन्य बड़ा कुलीन धनवान् सेठ था, उसके पुत्र के साथ पिता ने मेरा विवाह कर दिया। ॥४०६॥

अपने घर में पाई हुई शिक्षा के अनुसार मैं प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल सास और ससुर को प्रणाम करती, नतमस्तक होकर उनकी चरण-धूलि अपने सिर पर लेती ॥४०७॥

पति की भगिनी, भाई और परिजन-वर्ग को देखते ही एक-दम आदर-पूर्वक उनके लिए आसन देती ॥४०८॥

अन्न, पान, खाद्यादि से सबकी यथायोग्य सेवा करती, जिस को जैसा चाहिए उसको वैसा ही ले जाकर देती ॥४०९॥

ठीक समय पर चारपाई से उठ कर घर के काम-काज में लग जाती,
फिर हाथ-पैर धोकर, अंजलि बाँध कर, पति के पास जाती।
॥४१०॥

कंघी, अंजन और दर्पण आदि शृंगार सामग्री लेकर मैं दासी के समान स्वयं अपने हाथ से पति का शृङ्गार करती ॥४११॥

मैं अपने हाथ से ही भोजन पकाती, अपने हाथ से ही बर्तन धोती;
जैसे माता अपने एकमात्र पुत्र की सेवा करे, वैसे ही मैं अपने पति की सेवा करती ॥४१२॥

किन्तु मेरे समान पति-परायणा, विनम्र, उषःकाल से पूर्व चारपाई को छोड़ देने वाली, आलस्य-रहित और सदाचारिणी पत्नी की तरफ से भी मेरे स्वामी का चित्त हट गया।
॥४१३॥

उसने माता-पिता से कह दिया, "मुझे घर छोड़ जाने की अनुमति दो। मैं ऋषिदासी के साथ एक घर में नहीं रह सकता।" ॥४१४॥

"पुत्र! ऐसा मत कहो। ऋषिदासी समझदार स्त्री है, बुद्धिमती है, पौ फटने से पहले ही चारपाई छोड़ देने वाली है, आलस्य-रहित है, सदाचारिणी है। तेरा चित्त उस पर से क्यों हट गया है?" ॥४१५॥

"ऋषिदासी ने मेरा कोई अनिष्ट नहीं किया है, किन्तु मैं उसके साथ एक घर में नहीं रह सकता। मुझे तो तुम घर छोड़ जाने की ही अनुमति दो।" ॥४१६॥

मेरे पति के ऐसे वचन सुन कर सास और ससुर ने मुझसे पूछा,

"बेटी ! क्या तुझसे इसका कोई अपराध बन पड़ा है ? निस्संकोच होकर कह।" ॥४१७॥

"मुझसे इनका कोई अपराध नहीं बन पड़ा है। मैंने इनका कोई अनचाहा काम भी नहीं किया है। कभी कोई कुवाक्य भी इन्हें नहीं बोला है। फिर भी मेरे स्वामी मुझसे क्रुद्ध हैं। मैं नहीं जानती कि मैं क्या करूँ।" ॥४१८॥

मेरे सास-ससुर दुःखी और उदासीन हो गए, किन्तु अपने पुत्र की प्राण-रक्षा के लिए वे मुझे मेरे पिता के घर ले गए और दुःखी होकर कहने लगे, "आज हम रूपवती गृहलक्ष्मी से रहित हो गए!" ॥४१९॥

तदुपरांत मेरे पिता ने मेरा एक अन्य धनवान् पुरुष के घर में पुनर्विवाह कर दिया,
और पहले सेठ ने मेरे लिए जितना धन दिया था, उसका आधा परिमाण धन भी लिया ॥४२०॥

एक मास वहाँ सुखपूर्वक वास करने के उपरांत मैं वहाँ से भी बहिष्कृत की गई,
यद्यपि वहाँ भी सर्वथा निर्दोष और सदाचारिणी होकर मैंने दासी के समान सबकी सेवा की ॥४२१॥

एक दिन एक जितेन्द्रिय, शांतचित्त भिक्षु को भिक्षा के लिए घूमते देखकर मेरे पिता ने उससे कहा, "यदि तू इस चीवर (भिक्षु-वस्त्र) और भिक्षा-पात्र को दूर फेंक दे, तो तू मेरा जामाता हो सकता है।" ॥४२२॥

इस पति के साथ मैं पन्द्रह दिन वास कर पाई थी कि उसने भी पिता के पास आकर कहा, "मेरे भिक्षु-वस्त्र, भिक्षा-पात्र और पीने का पात्र मुझे वापस करो। मैं फिर भिक्षाचर्या करूँगा।" ॥४२३॥

यह सुन कर मेरे माता-पिता और सब कुटुम्बियों ने उससे कहा, "यहां तुझे वास करना क्यों अच्छा नहीं लगता? शीघ्र बता, हम तेरे लिये क्या करें. जिससे तू प्रसन्न हो?" ॥४२४॥

यह सुनकर उसने कहा, "अकेले रहने में ही मुझे सुख है। ऋषिदासी के सहित मैं एक जगह वास नहीं करूंगा।" ॥४२५॥

उसने विदाई ली। मैं अकेली चिंता करने लगी। बाद में माता-पिता के पास जाकर मैंने प्रार्थना की. "प्रव्रज्या ग्रहण करने की या मरने की मुझे अनुमति दो।" ॥४२६॥

अकस्मात विनय-पिटक की पंडिता. बहुश्रुता, सदाचारिणी. आर्या जिनदत्ता नाम की भिक्षुणी मेरे पिता के घर भिक्षा के लिए आई ॥४२७॥

उसको देखकर मैं आसन छोड़कर खड़ी हो गई और आदर-पूर्वक उसे आसन प्रदान किया:

जब भिक्षुणी सुख से बैठ गई तो मैंने उसकी पाद-वंदना की और भोजन-पान जो कुछ भी उस समय उपस्थित था. उससे मैंने उसे संतृप्त किया ॥४२८॥

फिर मैंने उससे प्रार्थना की, "आर्ये! मैं प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छुका हूँ।" ॥४२९॥

पिता ने मुझसे कहा, "पुत्री! तू यहीं रह कर धर्माचरण कर।

भोजन-पानादि देकर तू यहीं रह कर ब्राह्मणों और श्रमणों की सेवा कर।" ॥४३०॥

मैंने विलाप करते हुए दोनों हाथ जोड़ कर पिता को प्रणाम

करते हुए निवेदन किया, "पिताजी ! मैं अपने किए हुए पाप-कर्मों को धोऊँगी ।" ॥४३१॥

तब पिता ने मुझसे कहा, "पुत्री ! तू परम ज्ञान को प्राप्त कर। सर्वोच्च धर्म में प्रतिष्ठित होकर तू उस परम-पद निर्वाण को प्राप्त कर, जिसका मनुष्य-श्रेष्ठ बुद्ध ने साक्षात्कार किया ।" ॥४३२॥

माता-पिता और सब भाई-बंधुओं से विदाई लेकर और उन्हें प्रणाम कर मैं प्रव्रजित हो गई और सात दिन के अंदर ही मैंने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया ॥४३३॥

एक-एक करके मैंने अपने सात पूर्व जन्मों की घटनाओं और कर्म-विपाकों को स्मरण किया; यह कहानी मैं तुमसे आज कहूँगी, मनोयोग-पूर्वक सुनो ॥४३४॥

एरककच्छ नामक नगर में मैं एक धनवान् सोनार थी । यौवन के मद में मस्त होकर मैं वहाँ परस्त्री-रत हो गई ॥४३५॥

मरण के उपरांत बहुत काल तक मैं नरक में पचती रही,
वहाँ बहुत दुःख पा-पाकर मैं एक वानरी के गर्भ में उत्पन्न हुई ॥४३६॥

जन्म के सात दिन बाद ही वानर-यूथों के स्वामी ने मेरे अंडकोषों को चीर दिया ।
परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया ॥४३ ॥

मरण के बाद सिंधु नदी के अरण्य में एक कानी और लँगड़ी बकरी के पेट में मैंने जन्म पाया ॥४३८॥

वहाँ भी मेरे अंडकोष चीरे गए, कीड़ों ने मुझे काटा, इस प्रकार बारह वर्ष तक मैं कड़ी यातना पाती रही ।

बालक-बालिकाओं को पीठ पर लेकर ढोना यही मेरा वहां

दैनिक काम था।
परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया ॥४३९॥

वहाँ से भी मर कर मैंने एक ग्वाले की गाय के पेट में लाख के-से वर्ण वाले बछड़े के रूप में जन्म पाया।
वहाँ भी बारह मास बाद मैं मुष्कछिन्न की गई ॥४४०॥

हल जोतना और गाड़ी में हँकना, यही मेरा वहाँ काम था,
बाद में मैं अंधी और अकर्मण्य हो गई। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया! ॥४४१॥

वहाँ से भी मरण के उपरांत मैं एक गलियों में फिरने वाली (गृहहीन) दासी के घर उत्पन्न हुई।
मैं स्त्री भी नहीं थी, पुरुष भी नहीं थी। यह परिणाम मैंने पर-स्त्रीगमन का पाया ॥४४२॥

तीस वर्ष की अवस्था में मेरी मृत्यु हो गई।
मृत्यु के उपरांत एक अतिशय दरिद्र, दुःख-ग्रस्त, ऋण-भार से दबे हुए, गाड़ीवान के घर में मैं उसकी कन्या होकर पैदा हुई ॥४४३॥

एक धनवान् वणिक् का मेरे पिता पर विपुल ऋण चाहता था,
उसने उसे चुकाने के रूप में मुझ पर अधिकार कर लिया।
मैं विलाप करते-करते अपने पिता के घर से बाहर ले जाई गई ॥४४४॥

सोलह वर्ष की अवस्था में मैंने यौवन में पदार्पण किया,
तब उस वणिक् के पुत्र गिरिदास ने मुझे को रखना कर लिया ॥४४५॥

गिरिदास की एक पत्नी पहले से भी थी,

वह गुणवती, शीलवती, यशस्विनी और पतिव्रता थी;
मैं उस स्त्री के प्रति ईर्ष्या और द्वेष करने लगी ॥४४६॥

यह उसी कर्म का फल था कि दासी के समान तन्मय होकर
भी जिस-जिस पुरुष की मैंने सेवा की, उसीने मुझसे घृणा की.
मुझे तिरस्कार-पूर्वक छोड़ा।
किन्तु आज मैंने उसका भी अंत कर दिया ! ॥४४७॥

सोलहवाँ वर्ग

७३. सुमेधा

मंतावती नगरी के क्रौंच नामक राजा की पुत्री। वयः प्राप्त होने पर माता-पिता ने इसका विवाह वारणवती नगर के अनिकरत्त नामक राजा के साथ करना ठीक किया; किंतु सुमेधा बालकपन से ही भिक्षुणी-संघ के सत्संग में आ चुकी थी। अतः उसे जब यह विदित हुआ तो उसने अपने माता-पिता से कहा, "मुझे गृह-वास से कुछ नहीं करना है। मैं तो प्रव्रजित हूँगी।" माँ-बाप ने अनेक प्रकार से समझाने के प्रयत्न किए, किंतु वे लड़की को अपने संकल्प से विचलित नहीं कर सके। अपने हाथ से अपने बाल काट कर वह प्रव्रजित हो गई। गंभीर साधना कर उसने परम ज्ञान प्राप्त किया। जब उसके आत्मीय जन उसे तप से विरत करने और गृह-वास में पुनः लाने के लिए गए, तो उसने अपने धर्मोपदेश से उन्हें बुद्ध-शासन में दीक्षित किया। अपने जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुई वह नाटक की-सी [illegible] के साथ कहती है:

मंतावती नगरी के राजा क्रौंच की पटरानी के गर्भ से उत्पन्न
कन्या सुमेधा,
बुद्धशासन का पालन करने वालों में बड़ी श्रद्धावती
थी ॥४४८॥

वह शीलवती, वाग्मिनी, बहुश्रुता और बुद्ध-शासन के अनुसार
शिक्षा पाई हुई थी:

एक दिन अपने माता-पिता के पास जाकर उसने कहा, आप दोनों सुनें ॥४४९॥

"मेरा मन निर्वाण में लगा है; यह देह यदि देव-स्वभाव को प्राप्त कर दिव्य भी हो जाय, तो भी यह नश्वर है, अशाश्वत है।"
इन विघ्नों से भरे हुए, तुच्छ, दुःखद भोगों को लेकर मैं क्या करूँ ? ॥४५०॥

ये विषय तो सर्प के विष के समान ही बड़े जहरीले और कटु हैं; किन्तु मूर्ख लोग इन्हीं में आसक्त होकर नरक-गामी होते हैं और चिर-काल तक बड़े भारी दुःख का अनुभव करते हैं ॥४५१॥

पापकर्मों में आसक्त, दुर्बुद्धि मनुष्य नरक में पड़ कर, बड़े दुःख में तप्त होते हैं; ज्ञान-हीन जन सदा कर्म में असंयत, वाणी में असंयत और विचार में असंयत होते हैं ॥४५२॥

मूढ़जन बुद्धि और चेतना से हीन होते हैं; दुःख की उत्पत्ति का कारण उन्हें ज्ञात नहीं होता;
उपदेश दिए जाने पर भी वे उपदेश को ग्रहण नहीं करते, चार आर्य सत्यों को समझने में वे असमर्थ होते हैं ॥४५३॥

माता ! श्रेष्ठ सम्यक् संबुद्ध का दिया हुआ सत्य का उपदेश अधिकांश जनता को अज्ञात है;
वह तो भव का ही अभिनन्दन करती है या देव-लोक में जन्म पाने की अभिलाषिणी है ॥४५४॥

किंतु देव-लोक में जन्म भी तो नश्वर है, अशाश्वत है।
इस संसार की अनित्यता का तो कहना ही क्या ?
फिर भी मूढ़जन पुनर्जन्म में भय का दर्शन नहीं करते ॥४५५॥

चार[1] प्रकार की दुर्गतियाँ और दो[2] प्रकार की सुगतियाँ हैं,
इनमें से दोनों प्रकार की सुगतियों को पाना तो बड़ा कठिन है;
और दुर्गतियों में पड़े हुए प्राणियों के लिए नरक में प्रव्रज्या
ग्रहण करने का तो कोई उपाय ही नहीं है ॥४५६॥

अतः मैं आप दोनों से ही कहती हूँ—मैं प्रव्रज्या लूँगी और
दशबल भगवान् तथागत की अनुगामिनी बन कर,
अविचल चित्त से जन्म-मृत्यु के प्रहाण के लिए यत्न करूँगी।
आप मुझे अनुमति दें ॥४५७॥

पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करने और इस प्रकार, क्षीण देह को
धारण करने से अब मुझे कोई प्रयोजन नहीं रहा;
भव-तृष्णा के निरोध के लिए अब मैं प्रव्रज्या लूँगी।
मुझे अनुमति दो ॥४५८॥

यह बुद्धों के आविर्भाव का समय है! ऐसा सुअवसर बड़े
भाग्य से मिलता है।
मैं इसे जाने न दूँगी;
जीवन-पर्यन्त शील और ब्रह्मचर्य के आचरण से मैं भ्रष्ट न
हूँगी।" ॥४५९॥

सुमेधा ने माता-पिता से पुनः यह कहा, "मैं इसी स्थान पर
अनाहार करके मृत्यु का आलिंगन कर लूँगी और यह मेरे
लिए श्रेयस्कर भी होगा, किंतु गृह-वास के रूप में पुनः
आहार ग्रहण न करूँगी।" ॥४६०॥

शोकार्त होकर सुमेधा की माता विलाप करने लगी;
पिता भी दुःख से अभिभूत होकर प्रासाद के फर्श पर पड़ी

---

१. नरक, पशु-योनि, प्रेत-योनि और असुर-योनि।
२. मनुष्य-जन्म और देव-लोक में जन्म।

हुई कन्या को समझाने और प्रव्रज्या लेने से निवृत्त करने के लिए कहने लगा— ॥४६१॥

"वत्से ! उठ। शोक किसके लिए ? मैंने तुझे वारणवती के राजा प्रियदर्शन अनिकरत्त को प्रदान किया है; ॥४६२॥

तू राजा अनिकरत्त की प्रधान महिषी बनेगी।
वत्से ! शील और ब्रह्मचर्य का जीवन एवं प्रव्रज्या बड़े कष्टकर मार्ग हैं।
तू रानी बन कर प्रभूत धन और ऐश्वर्य का उपभोग कर;
तू तरुणी है, सब सुख तेरे अधिकार में हैं;
तू जीवन के सुख का उपभोग कर। आ वत्से !
स्वामी का वरण कर।" ॥४६४॥

यह सुनकर सुमेधा ने पिता से कहा :
"पिता जी ! यह नहीं हो सकता ! बार-बार जन्म लेने में सार वस्तु कुछ भी नहीं है। मैं या तो प्रव्रज्या लूँगी या फिर मेरा मरण ही होगा। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ वरण करना नहीं है ॥४६५॥

इस कलुषित, अपवित्र, दुर्गंध-मय, भय देने वाली, गंदगियों से भरी हुई, चमड़े से टँकी हुई, मल-पूर्ण काया का क्या मूल्य ? ॥४६६॥

मांस और रक्त के लेप से आच्छादित, तुच्छ, कीटाणुओं का घर, पक्षियों का खाद्य, यह शरीर है।
इसको जानने वाली मेरे सामने इसका क्या मूल्य है ?
कौन इसे चाहेगा ? तुम किसको इसे दोगे ? ॥४६७॥
चेतना-रहित देह शीघ्र ही श्मशान पहुँचा दी जाती है;
जुगुप्सा-पूर्वक उसे स्वजन भी बेकार काठ के समान वहीं छोड़कर चले आते हैं ॥४६८॥

श्मशान में छोड़ी हुई लाश दूसरों का खाद्य बनती है।
उसको छोड़ कर माता-पिता भी चले आते हैं और जुगुप्सा-पूर्वक स्नान करते हैं.
दूसरे लोगों की तो बात ही क्या? ॥४६९॥

मनुष्य का कलेवर अस्थियों और स्नायुओं का समूह मात्र है, सब प्रकार की गंदगियों से भरा हुआ है, गंदे मांस और रक्त का आकर है,
किंतु फिर भी मूर्खजन इसमें आसक्त हैं ॥४७०॥

यदि इस देह को फाड़कर इसके भीतर को बाहर करके दिखाया जाय तो इसकी असह्य दुर्गंध से किसी की अपनी माता भी घृणा कर दूर हट जायगी ॥४७१॥

स्कंध, धातुओं और आयतनों का मिलन-संधि, जन्म का मूल कारण.
यह शरीर दुःखों की योनि है। इससे मेरा कोई अनुराग नहीं।
फिर मैं किस इच्छा से इसका वरण करूँ? ॥४७२॥

यदि प्रतिदिन सौ-सौ छुरियों के नवीन आघातों से सौ सौ वर्ष तक कठिन यातना देकर मृत्यु मेरा आलिंगन करे तो वह भी मेरे लिए श्रेयस्कर होगा, यदि वह मृत्यु ही मेरे सब दुःखों का चरम अवसान हो जाय ॥४७३॥

शास्ता का वचन है कि जो ज्ञानी हैं वे तो जन्म-मरण के निरोध का ही प्रयत्न करते हैं.
किंतु जो अज्ञानी हैं उन्हें तो बार-बार मृत्यु की गोद में इतना दीर्घ काल तक संसार में ही जाना पड़ता है।४७४।

देव-लोक में, मनुष्य-लोक में, पशु-योनि में, असुर-योनि में,

प्रेत-योनि में, एवं नरक-योनि में, असंख्य बार मृत्यु के मुख
में पड़-पड़ कर प्राणी असह्य दुःख सहते हैं।
अधम योनियों में पड़-पड़ कर अनेक क्लेशों के शिकार बनते हैं,
यहाँ तक कि देव-लोक में भी उन्हें निस्तार नहीं मिलता;
निर्वाण-सुख की अपेक्षा श्रेष्ठतर सुख और कोई नहीं है ॥४७६॥

वही मनुष्य निर्वाण-प्राप्त हैं जो अनासक्त हैं और जिन्होंने
अविचलित चित्त से जन्म-मरण के प्रहाण के लिए दशबल
(भगवान् बुद्ध) के शासन का अभ्यास किया है ॥४७७॥

पिताजी ! मैं आज ही प्रव्रजित हूँगी। मुझे सारहीन भोगों
से कोई प्रयोजन नहीं। उनकी मुझे कोई इच्छा भी नहीं।
जड़ से काट डाले गये तालवृक्ष के समान मेरी काम-वासनाएँ
जड़ से विनष्ट हो गई हैं।" ॥४७८॥

उसने पिता से ऐसा कहा। उधर राजा अनिकरत्त भी जिसके
लिये वह दी गई थी, भावी वधू की सम्मति प्राप्त करने के
लिए वरण-काल के उपस्थित होने पर वहाँ आ पहुँचा ॥४७९॥

किंतु सुमेधा तो अपने काले, घने, सुकोमल केशों को तलवार
से काट कर, अपने कमरे का दरवाज़ा बंद कर, ध्यान में लीन
बैठी थी। उसने अभी प्रथम ध्यान में प्रवेश किया था ॥४८०॥

जिस समय अनिकरत्त नगर में आया, सुमेधा प्रासाद में बैठी
हुई अनित्यता-सम्बन्धी ध्यान कर रही थी ॥४८१॥

जब वह ध्यान कर रही थी तो सोने के गहनों और मणियों
से अपनी देह को विभूषित किए हुए राजा अनिकरत्त ने उसके
प्रासाद में प्रवेश किया और उसके पाणि-ग्रहण के लिए वह
प्रार्थना करने लगा— ॥४८२॥

"युवती ! राज्य-सिंहासन पर बैठकर तू धन, ऐश्वर्य और

प्रभुता का उपभोग कर। भोग सुखकारी हैं और तू भी तरुणी है। तू जीवन के इस सुख-भोग का अनुभव कर जो इस लोक में बड़ा दुर्लभ है ॥४८३॥

मेरा सब राज्य तेरे लिए अर्पित है। तू इच्छानुसार भोग कर, इच्छानुसार दान कर। देख पगली मत बन। तेरे माता-पिता दुःखी हो रहे हैं।" ॥४८४॥

तब सुमेधा ने राजा से कहा :
"भोग-तृष्णा से अब मेरा कोई प्रयोजन नहीं रहा, मैं मोह-हीन हूँ।

तू भी कामोपभोग में आनन्द मत मान। कामोपभोग में दुष्परिणामों का अवलोकन कर। उनमें अशुभ की भावना कर ॥४८५॥

देख, चारों महाद्वीपों का राजा मान्धाता अद्वितीय धनैश्वर्य-शाली और भोगसम्पन्न था; किन्तु वह भी अतृप्त वासनाओं को लेकर ही मरा। उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हुई ॥४८६॥

आकाश से यदि सातों प्रकार के रत्नों की दसों दिशाओं को भरने वाली वृष्टि भी हो, तो भी उससे मनुष्य की तृष्णा की तृप्ति नहीं होगी।
मनुष्य फिर भी अतृप्त होकर मरेगा ॥४८७॥

विषय-भोग तो हड्डी के समान हैं,
विषधारी सर्प के उठे हुए फन के समान हैं,
उद्दीप्त उल्का के समान वे जलाने वाले हैं, हड्डियों के कंकाल के समान वे भयंकर हैं ॥४८८॥

विषय-भोग अनित्य हैं, अध्रुव हैं, बहुत दुःखों को देने वाले हैं, महा विष से भरे हुए हैं। पाप इनका मूल है, दुःख

ही उनका परिणाम है। सन्तप्त लोहे के गोले के समान वे भयंकर हैं ॥४८९॥

बिषय-भोग वृक्ष-फल के समान (दुःखद) हैं, मांस-पेशी के समान अशुभ हैं, स्वप्न के समान धोखा देने वाले हैं, मँगनी की चीज के समान (तुच्छ) हैं ॥४९०॥

विषय-भोग शस्त्र-प्रहार के समान हैं, रोग के समान हैं, फोड़े के समान हैं, पाप-रूप हैं।

वे जलते हुए अङ्गारों के समान हैं, अघमूल हैं, भय और वध से भरे हुए हैं ॥४९१॥[1]

इस प्रकार ये विषय-भोग बहुत दुःखों वाले और विघ्नकारी हैं। तुम लौट जाओ। जीवन की तृष्णा में मेरी कोई आस्था नहीं रही ॥४९२॥

दूसरा मेरे लिए क्या करेगा? मेरे सिर में तो आग लग रही है।

जरा और मरण मेरे पीछे लगे हुए हैं। इनके विनाश करने के लिए मुझे स्वयं ही प्रयास करना होगा।" ॥४९३॥

कमरे का दरवाजा खोल कर सुमेधा ने देखा कि उसके माता-पिता और अनिकरत्त वहीं फ़र्श पर बैठे रो रहे हैं। उसने उनसे कहा : ॥४९४॥

"जो अज्ञानी हैं उनका बारबार जन्म-मरण और रोना-धोना दीर्घ है।

कभी पिता का मरण, कभी भाई का मरण, कभी अपना मरण, यह सब अनादि है। कब से चल रहा है, इसका कुछ पता नहीं। यह परम अज्ञात है ॥४९५॥

---

१. ४८८ से ४९१ तक की गाथाओ के प्रसंग के लिए देखिए पोतलिय-सुत्त (मज्झिम. २।१।४)

अश्रु, स्तन्य और रुधिर से सिक्त यह संसार अनादि है। इसके आदि का पता नहीं चलता। यह परम अज्ञात है।
इस तथ्य का तुम स्मरण करो।

आवागमन में चक्कर लगाते हुए प्राणियों की अस्थियों से जो विशाल स्तूप बनेंगे, उनका तनिक चिंतन करो ॥४६६॥

सिर्फ एक ही कल्प की इकट्ठी की हुई मनुष्य की हड्डियों का स्तूप कितना बड़ा बनेगा, इसका चिंतन करो ॥४६७॥
चारों महासमुद्रों की जलराशि के समान अपरिमित अश्रु, स्तन्य और रुधिर का स्मरण करो।

इस अज्ञात, अविदितपरम, संसार में चक्कर लगाते हुए प्राणियों के माता-पिताओं की संख्या की गणना करने के लिए, एक लिखने के लिए समस्त जंबुद्वीप की मिट्टी भी पर्याप्त न होगी ॥४६८॥

समस्त पृथ्वी के तृण, काठ, शाखा और पत्तों आदि को इकट्ठा करके भी इस अज्ञात, अविदितपरम संसार में चक्कर लगाते हुए प्राणियों के पिताओं की संख्या का निर्णय नहीं किया जा सकता। इस सत्य का तुम स्मरण करो ॥४६९॥
समुद्र के अन्दर पड़े हुए अंध कच्छप की उपमा का स्मरण करो।

कहो समुद्र! पाश बँधे हुए छिद्र वाले जुए के छिद्र में होकर सिर से आकाश को देखना! यह दुर्लभ है। इसी प्रकार मनुष्य-जन्म की प्राप्ति भी दुर्लभ है। अनेक कल्पों के बाद यह कभी ही कभी मिलता है ॥४७०॥
झाग की तरह क्षणिक, दुःखमय यह शरीर है, इसका स्मरण करो।

अनित्य स्कंध-समूहों की ओर दृष्टिपात करो। नरक की अनेक यातनाओं को भी विस्मृत मत होने दो ॥५०१॥

बार-बार, विभिन्न जन्मों में मर-मर कर श्मशानों को पाट दिया है, इसका स्मरण करो, कुंभीपाक के भय को स्मरण करो। चार आर्य सत्यों को स्मरण करो ॥५०२॥

अमृत के विद्यमान होने पर क्या तुम पाँच कड़ुवी चीज़ों को पीना पसंद करोगे ?
सभी विषय-भोग पाँच कड़ुवी चीज़ों से भी अधिक कड़ुवे हैं ॥५०३॥

अमृत के विद्यमान होने पर भी क्या तुम विषयों की आग में जलना पसंद करोगे ?
सभी विषय-भोग जलाने वाले, क्षोभ पैदा करने वाले और संताप देने वाले हैं ॥५०४॥

विषय-भोग बहुत शत्रुता पैदा करने वाले हैं। जब तुम्हें शत्रुता का परिहार करना ही अभीष्ट है तो इन विषय-भोगों से तुम्हारा क्या प्रयोजन ?
कामासक्ति ही राजा, अग्नि, चोर, जल और अन्य अप्रिय वस्तुओं की शत्रुता को आह्वान देती है ॥५०५॥

मोक्ष के विद्यमान होने पर वध और बंधन से भरी हुई कामासक्ति से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? कामासक्ति, वध और बंधन को पैदा करती है। कामासक्त मनुष्य अनेक दुःख भोगते हैं ॥५०६॥

जलती हुई तृण-उल्का (मशाल) को जो हाथ में लिए रहेगा, उसे नहीं छोड़ेगा, वह उससे जलेगा ही, बचेगा नहीं। इसी प्रकार कामासक्ति को ग्रहण करने पर मनुष्य की दशा होगी।

जो इसे नहीं छोड़ेगा, उसे वह रुलायेगी ही, छोड़ेगी नहीं ॥५०७॥

अल्प कामसुख के लिए तुम विपुल (मोक्ष) सुख को न छोड़ दो।
देखो पृथुलोम जाति की मछली के समान अंकुश को निगल कर तुम मृत्यु प्राप्त न करना ॥५०८॥

भोग-तृष्णा का दमन करो, अन्यथा भूखे चांडालों के द्वारा मारे हुए, जंजीर में बंधे हुए कुत्तों के समान तुम्हारी ग्लानि-पूर्ण मृत्यु होगी ॥५०९॥

भोगों में आसक्त होकर अनेक दुःख और मानसिक क्लेशों को तुम पाओगे।
भोगासक्ति का परित्याग करो। भोग अध्रुव हैं, सदा रहने वाले नहीं हैं ॥५१०॥

जब जराहीन निर्वाण तुम्हारे सामने है, तो जराशील भोगों से तुम्हें क्या प्रयोजन? सभी योनियां, सभी प्रकार व्याधि और मृत्यु से भरी हुई हैं ॥५११॥

यह (निर्वाण) अजर है, यह अमर है, यह अजरता और अमरता का स्थान है,
जहाँ शोक नहीं है, जहाँ शत्रु नहीं है, विघ्न नहीं है। यह अचल है, भयहीन है, संतापहीन है ॥५१२॥

बहुत जनों ने इस अमृत का आस्वादन किया है,
आज भी यह प्राप्त किया जा सकता है,
किंतु संपूर्ण अंतःकरण से ठीक प्रकार जो इसके लिए यत्न करेंगे,
वही इसे प्राप्त करेंगे,

विना प्रयास करने वालों के द्वारा वह प्राप्य नहीं है।"।५१३॥
सभी संस्कारों से विरक्त हुई सुमेधा ने ऐसा कह कर अनिकरत्त की अनुनय करते हुए अपने केशों से भूमि को स्पर्श किया ॥५१४॥

अनिकरत्त ने भी खड़े होकर अंजलि बाँधी और सुमेधा के पिता से कहा :
"सत्य और मुक्ति के दर्शन के लिए तुम सुमेधा को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए अनुमति देकर विदा करो।" ॥५१५॥

संसार के शोक और भय से व्यथित हुई सुमेधा माता-पिता से आज्ञा लेकर प्रव्रजित हो गई; शिक्षार्थिनी होने के समय ही छः श्रेष्ठ ज्ञानों को प्राप्त कर उसने सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त कर लिया ॥५१६॥

राजकन्या का यह निर्वाण अति आश्चर्यकारी है, अद्भुत है! अपने बाद के जीवन में उसने अपने पूर्व-जन्मों का विवरण दिया है, जो इस प्रकार है : ॥५१७॥
जिस समय भगवान् कोणागमन बुद्ध संघाराम नामक नवीन विहार में निवास कर रहे थे, उस समय मैं और मेरी दो सखियों (क्षेमा और धनंजानी) ने एक विहार निर्माण करवा कर उन्हें दान किया था ॥५१८॥
उसके पुण्य-प्रभाव से हमने दस, सौ, हजार, लाख, असंख्य वार देवलोक में जन्म प्राप्त किया, मनुष्य-लोक का तो कहना ही क्या? ॥५१९॥

देवलोक में भी हमारा बड़ा प्रभाव प्रतिष्ठित हो गया, मनुष्य-लोक की तो बात ही क्या?
फिर स्त्री-रत्न होकर मैंने जन्म लिया और सात रत्नों को रखने वाले चक्रवर्ती सम्राट् की मैं प्रधान महिषी हुई ॥५२०॥